

संस्कृत प्रचार-पुस्तकमाला सं० २६

स्वर्गीय—

संस्कृत-कवि-सम्मेलनम्

संस्कृत के कतिपय सुप्रसिद्ध स्वर्गीय महाकवियों के
सम्मिलन तथा कवितापाठ का "कवि अवतरण"
के रूप में एक अभिनयात्मक प्रदर्शन



श्री नन्दलाल बाजोरिया संस्कृत महाविद्यालय

अस्सी, वाराणसी

की सहायता से प्रकाशित

कृतज्ञता प्रकाश

इस पुस्तक के प्रकाशन में वाराणसी के सुप्रसिद्ध संस्कृत शिक्षण संस्थान श्री नन्दलाल बाजोरिया संस्कृत महाविद्यालय के उदार अधिकारियों ने जो आर्थिक सहायता प्रदान की है उसके लिये हम हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करते हैं और आशा करते हैं कि अन्य विद्यालयों के भी समर्थ अधिकारी महानुभाव इस पुनीत आदर्श को अपना कर हमारे अन्य संस्कृत प्रचारोपयोगी पुस्तकों के प्रकाशन में सहयोग देने की कृपा करेंगे ।

विनीत—
लेखक

स्वर्गीय—

संस्कृत-कवि-सम्मेलनम्

लेखक :—

श्री वासुदेव द्विवेदी शास्त्री

(संस्कृतप्रचार-पुस्तकमाला-सम्पादकः)

सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालयः

वा रा ण सी

प्रकाशक—

सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालयः

डी. ३८/११०, हौजकटोरा

वाराणसी

द्वितीय आवृत्ति : एक हजार

मूल्य : एक रुपया

मुद्रक—

श्री केशव प्रसाद सिंह

हिन्द प्रिंटिंग वर्क्स,

भदौनी, वाराणसी ।

आवश्यक निवेदन

किमी भी भाषा अथवा साहित्य का जनसाधारण में प्रचार मनोरञ्जक साधनों द्वारा अधिक सुविधा से होता है यह एक सर्वसम्मत तथ्य है। इसीलिये शिक्षाजगत् में कवितापाठ, गीत, अभिनय, कथोपकथन, अन्त्याक्षरी, वादविवाद कथावाचन तथा इसी प्रकार के अन्य मनोरञ्जक साधनों का प्रचलन किया गया है। ऐसे ही साधनों में मनोरंजन का एक प्रमुख साधन कवि-दरबार अथवा कवि-अवतरण भी है। इसमें किसी भी भाषा के सभी प्रसिद्ध स्वर्गीय कवि एक साथ रंगमञ्च पर अपनी उसी प्राचीन वेषभूषा में आते हैं और अपनी कृतियों में से कुछ अत्यन्त मनोहर रचनायें सुनाते हैं। यह कार्य जनता के मनोरञ्जन के साथ-साथ उस भाषा एवं साहित्य के प्रचार का भी साधन होता है। इसी लिये साहित्यिक एवं शिक्षासम्बन्धी समारोहों के अवसर पर बहुधा “कवि-दरबार” का आयोजन हुआ करता है।

जिस प्रकार अन्य भाषाओं के कवि-दरबार होते हैं वैसे ही कभी-कभी कहीं पर संस्कृत के भी कवि-दरबार का आयोजन हो जाता है। ऐसे अवसरों पर यह देखा गया है कि जब सभी कवि अपनी-अपनी प्राचीन वेशभूषा में रंगमञ्च पर उपस्थित होते हैं और अत्यन्त मनोहर स्वर में कवितायें पढ़ते हैं तो संस्कृत न जानने वाली जनता भी बड़ी रुचि के साथ सनती है और अन्त तक सम्मेलन में बैठी रहती है। ऐसी स्थिति में संस्कृतप्रचार की दृष्टि से यह नितान्त आवश्यक है कि जगह-जगह पर संस्कृत कवि-दरबारों का भी आयोजन हो और उसके द्वारा जनता के हृदय में संस्कृत के प्रति आकर्षण उत्पन्न किया जाय। परन्तु संस्कृत के सर्वसाधारण विद्वानों तथा विद्यार्थियों के लिये सभी काव्यग्रन्थों का सुलभ होना, मिलने पर भी उनमें

से सर्वोत्तम कविताओं को चुनना तथा उन्हें रंगमञ्च पर आकर्षक रूप में प्रसङ्ग-निर्देश-पुरस्सर उपस्थित करना आदि कार्य अत्यन्त श्रमसाध्य हो जाता है और इसीलिये अधिकांश अध्यापक इसका आयोजन करने में प्रवृत्त नहीं होते और यही कारण है कि संस्कृत कवि-दरबारों का बहुत कम आयोजन देखने में आता है ।

अनेक संस्कृताध्यापकों तथा संस्कृतप्रेमी व्यक्तियों की इन्हीं कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए कुछ वर्ष पूर्व यह पुस्तक प्रकाशित की गई थी जिसकी सहायता से अनेक स्कूल-कालेजों तथा संस्कृतपाठशालाओं के अध्यापक एवं विद्यार्थी जब चाहे तभी संस्कृत कवि-दरबार का आयोजन कर लिया करते थे और उन्हें अभ्यास करने के अतिरिक्त और किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता था । आज उसी पुस्तक का यह द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया गया है । संस्कृत में इस ढंग की यह प्रथम पुस्तक है पर पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इसी ढंग की दो-चार और भी पुस्तकें बहुत शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली हैं । यदि इन पुस्तकों के अनुसार जगह-जगह पर संस्कृत कवि दरबारों का आयोजन किया जाय तो इससे संस्कृत के प्रचार में बड़ी सहायता मिलेगी ।

समस्त हिन्दी-अंग्रेजी स्कूलों तथा संस्कृत पाठशालाओं के पण्डित-विद्यार्थी-समाज से हमारी विनीत प्रार्थना है कि अपने अपने विद्यालय में इस पुस्तक की सहायता से संस्कृत-कवि-दरबार का आयोजन कर इस परिश्रम को सफल बनाने तथा संस्कृत प्रचार में सहयोग देने की कृपा करें ।

वैशाखपूर्णिमा, २०३२ वि०

विनीत—
लेखक

कुछ आवश्यक सूचनायें

१—इस पुस्तक के सम्बन्ध में—

क—पाठकों को मैं यह सूचित कर देना चाहता हूँ कि इस पुस्तक का प्रकाशन एक पथ-प्रदर्शन के रूप में ही किया गया है। अतः इसमें यथेष्ट परिवर्तन करने का सबको पूरा-पूरा अधिकार है। कविताओं को कम करने, अन्य अपेक्षित कविताओं को मिलाने तथा अनिर्दिष्ट कवियों की भी कविताओं को इसमें सम्मिलित करने के सम्बन्ध में सभी आयोजक पूर्ण स्वतन्त्र हैं।

ख—कविताओं के पाठक्रम को आकर्षक बनाने की दृष्टि से कवियों की उपस्थिति उनके उद्भवकाल के अनुसार नहीं रखी गई है। यदि कोई इतिहास के एकान्तप्रेमी सज्जन कवियों को कालक्रम के अनुसार ही उपस्थित करना चाहें तो वे निःसंकोच वैसा कर सकते हैं।

ग—अधिक समय लगने के भय से इस पुस्तक में अध्यक्ष का कोई भाषण नहीं रखा गया है। यदि कोई सज्जन आवश्यक समझें तो वे अध्यक्ष पद से एक सुन्दर सरल एवं महत्त्वपूर्ण भाषण करा सकते हैं।

२—कवितापाठ करने वालों के सम्बन्ध में—

क—इस आयोजन की सफलता एकमात्र कविता पढ़ने वालों के शुद्ध, स्पष्ट, सुस्वर, सरस, सविराम तथा स्वरों के उचित आरोहाऽवरोह से अनुप्राणित श्लोकपाठ पर निर्भर है। अतः कवितापाठ में भाग लेने वालों को उपर्युक्त सभी बातों पर पूरा ध्यान रखना चाहिये तथा उसका ठीक-ठीक अभ्यास कर लेना चाहिये।

ख—कविता पढ़ने वालों को अपनी-अपनी पाठ्य कविताओं का प्रसङ्गज्ञानपूर्वक अर्थ भी अच्छी तरह समझ लेना चाहिये जिससे कविता के भावों को ठीक-ठीक अभिव्यक्ति की जा सके।

ग—कविता पढ़ने वालों को सुन्दर स्वर से कविता पढ़ने के साथ ही हस्त नेत्र एवं मुख की मुद्राओं तथा विविधभाव-व्यञ्जक स्वरों से कविता के भाव को भी यथावत् उपस्थित करने का प्रयत्न करना चाहिये ।

घ—संस्कृत काव्यों में यद्यपि रसों के अनुसार भी छन्दों की योजना की गई है पर इसका सर्वत्र सर्वाङ्गरूप से निर्वाह सम्भव नहीं है । अतः बहुधा एक ही छन्द में विभिन्न रसों एवं भावों की रचनायें की गई हैं । ऐसी स्थिति में जिस श्लोक में जो रस हो उसे उसी रस एवं भाव के अनुरूप स्वर में पढ़ना चाहिये । इसका समुचित अभ्यास करना कवितापाठ करने वालों के लिये नितान्त आवश्यक है ।

ङ—कविता के भाव को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने के लिये कविताओं को दुहराना भी चाहिये । पर यह सब कविताओं के लिये आवश्यक नहीं है । दुहराने के औचित्य को ठीक-ठाक समझ कर ही उसका प्रयोग करना चाहिये ।

च—जो श्लोक दूरान्वयी हों उन्हें पढ़ते समय विराम तथा इङ्गितो द्वारा श्रोताओं को उसके अन्वय का भी ज्ञान करा देने का प्रयत्न करना चाहिये ।

छ—जो व्यक्ति जिस प्रदेश के कवि का कवितापाठ करता हो, उसका रंगरूपा तथा वेषभूषा उसी प्रदेश की जनता के समान होनी चाहिए । कवितापाठ के लिए पात्रों का वरण करते समय उनके रूपरंग तथा वेशभूषा के सामञ्जस्य पर पूर्ण-रूप से ध्यान देना चाहिये । कौन कवि किस प्रदेश का निवासी था और उसकी वेशभूषा कैसी हो सकती है; इसका साधारण परिचय इस पुस्तक में दिया गया है । इस सम्बन्ध में उससे कुछ सहायता ली जा सकती है ।

३—कविजनों के सम्बन्ध में—

क—कविजनों को रङ्गमञ्च पर खूब शान्त, गम्भीर तथा प्रसन्नमुद्रा में बैठना चाहिये ।

ख - जब एक कवि का कवितापाठ हो रहा हो तो अन्य कवियों को उसे खूब उत्सुकतापूर्वक सुनना चाहिये, उस समय आपस में बातें नहीं करनी चाहिये तथा बीच-बीच में और कवितापाठ के अन्त में भी प्रसन्नतासूचक मुद्राओं तथा निम्न-लिखित प्रशंसासूचक वाक्यों द्वारा कवितापाठ करने वाले कवि का सोल्लास अभिनन्दन करना चाहिये ।

कुछ प्रशंसासूचक वाक्य—

शोभनं शोभनम् । सुन्दरं सुन्दरम् । साधु साधु ।
 अतिसुन्दरम् । अतिशोभनम् । अत्यद्भुतम् ।
 अतीव रमणीयः प्रकारः कवितापाठस्य ।
 अतीव चमत्कारिणी उच्चारणशैली ।
 यादृशं स्वरसौन्दर्यं तादृशं पदमाधुर्यम् ।
 नितान्तं नूतनो भावः । अपूर्वा कल्पना ।
 अलौकिकं माधुर्यम् । अत्यद्भुता भावभङ्गिः ।
 अवर्णनीया वर्णनशैली । अपूर्वो रसपरिपाकः ।
 अतीव हृदयद्रावकं दृश्यम् । मर्मस्पर्शिनः शब्दाः ।
 कीदृशी कुशलता वर्तते अस्य कवेः ।
 कीदृशा इमे मनोहरा भावाः सन्ति । अभिनवाश्च ।
 कीदृशी मनोहारिणी इयं उक्तिः ।
 कीदृशी सूक्ष्मदर्शिता वर्तते ।
 अहो अपूर्वः कोऽपि कल्पनायाश्चमत्कारः ।
 आः, पदेभ्यां मधु स्यन्दत इव । अमृतं क्षरति इव ।
 अहो, रसधारा एव अनेन प्रवाहिता ।
 अनेकशः साधुवादाः । सहस्रशो घन्यवादाः । इत्यादि ।

कवि-नामावली

(जन्मकाल, स्थान तथा वेषभूषा आदि के निर्देश के साथ*) पृष्ठ	
महामुनि व्यास	५
कालिदास (ई० पू० १ शती, कश्मीर या उज्जयिनी, रेशमी घोती, चादर)	
अश्वघोष (ई० २ शती. साकेत. बौद्धवेष)	१०
श्रीहर्ष (ई० १२ शती. कन्नौज. घोती, दोशाला)	११
माघ (ई० ७ शती. राजस्थान. घोती, दोशाला, पगडी)	१३
भारवि (ई० ६ शती. दक्षिण. घोती, चादर, दक्षिणो पगडी)	१४
भट्टनारायण (ई० ७ शती. कन्नौज. घोती, चादर)	१५
भवभूति (ई० ८ शती. कन्नौज. शुभ्र घोती, चादर)	१६
वाणभट्ट (ई० ७ शती. कन्नौज. उत्कृष्ट घोती, चादर)	१८
भास (ई० पू० ४ शती. X. घोती, चादर, कुलही)	२०
जयदेव (ई० १२ शती. बंगाल. घोती, चादर, वैष्णव चन्दन)	२२
गोवर्धन (ई० १२ शती. बंगाल. घोती, चादर, कुर्ती)	२३
नीलकण्ठ (ई० १७ शती. मदुरा. घोती, चादर, चौबन्दी)	२५
क्षेमेन्द्र (ई० ११ शती. कश्मीर. घोती, कंचुक, शाल, पगडी)	२६
भर्तृहरि (ई० ७ शती. उज्जयिनी. उत्कृष्ट घोती, कंचुक, चादर)	२९
दण्डी (ई० ७ शती, दक्षिण. घोती, चादर,)	३१
जगद्धरभट्ट (ई० १३ शती. कश्मीर. घोती, कंचुक, शाल, पगडी)	३३
अमरुक (ई० ७ शती. कश्मीर. घोती, कंचुक, शाल, पगडी)	३८
जगन्नाथ (ई० १५ शती. तैलङ्ग घोती, चादर, दक्षिणी पगडी)	४१
घटकर्पूर (ई० ५ शती. X. घोती, चादर, बड़ी पगडी)	४३
महामुनि वाल्मीकि	४४
अम्बिकादत्त व्यास (ई० १८ शती. विहार. घोती, चौबन्दी, चादर, पगडी)	४७

*इसमें मतभेद एवं विचारभेद भी हो सकता है ।

चाण्डेवतायै नमः ।

स्वर्गीय—

संस्कृत-कवि-सम्मेलनम्

प्रस्तावना

अमरवाणी-वन्दना

अमरवाणि जय जननि !
त्वं हि सुधामय धाम सुनिर्मल-
शीतल-रस-निर्झरिणी ।
ललितबन्ध-रस-गन्ध-सुकोमल-
फुल्ल-कमल-वन-रम्य-गुणोज्ज्वल-
काव्य-कुञ्ज-तट-नटिनी ।
जय जय नन्दन-वन-हरिचन्दन-
चंचित-चरणद्वन्द्व-किरण धन-
रञ्जित-पङ्किल-घरणी ।
प्रणव-शिवोज्ज्वल-कल-झङ्कारिणि !
शङ्कित-जन-गण-बल-सञ्चारिणि !
जय जय हे चिरतरुणि !

(द्वौ बालकौ प्रविशतः)

प्रथमः—सखे ! अद्य किमिति अयं महान् जनसमुदायः एकत्र-
समवेतो दृश्यते ?

द्वितीयः—अहो किं त्वं न जानासि ?

प्रथमः—सखे ! अहं किमपि न जानामि ।

द्वितीयः—अरे अद्य श्रीनन्दलालवाजोरियासंस्कृतमहाविद्यालयस्य
वार्षिकोत्सवप्रसङ्गे * समागतानां सभ्यजनानां मनोविनोदाय स्वर्गीय
संस्कृतकविसम्मेलनस्य आयोजनं विहितं वर्तते ।

प्रथमः—स्वर्गीयसंस्कृत-कविसम्मेलनस्य आयोजनम् ! तत्र किं
भवति मित्र ?

द्वितीयः—तत्र सर्वे स्वर्गीयाः संस्कृतकवयः स्वस्व-वेषभूषादिभिः
सुसज्जिता भूत्वा आगच्छन्ति तथा सभापतिमहोदयस्य आदेशानुसारेण
निजनिजकवितापाठं कुर्वन्ति ।

प्रथमः—अहो तर्हि मनोरञ्जनस्य इदं समीचीनं साधनं वर्तते ।

द्वितीयः—न केवलं मनोरञ्जनस्य अपि तु संस्कृतभाषायाः
प्रचारस्य अपि ।

प्रथमः—परन्तु ये संस्कृतं न जानन्ति तेषामत्र आगमनेन को लाभः ?

द्वितीयः—कथं न, तेषामपि महान् लाभः अस्ति । ते आत्मनो
देशस्य महाकवीनां दर्शनं करिष्यन्ति, तेषां परिचयं प्राप्स्यन्ति, तैर्विर-
चितानि मनोहराणि पद्यानि श्रोष्यन्ति तथा संस्कृतगीतानां रसास्वादनं
करिष्यन्ति ।

प्रथमः—परन्तु अर्थज्ञानं विना केवलं कवितानां श्रवणेन को नाम
आनन्दो भविष्यति श्रोतॄणाम् ?

* अथमंशो विभिन्नस्थानप्रसङ्गानुसारेण परिवर्तनीयः ।

द्वितीयः—अरे, भवान् न जानाति । संस्कृतभाषायाः कवितासु एतादृशं पदमाधुर्यं नादसौन्दर्यं च भवति येन अर्थज्ञानं विनापि श्रोतारः श्रवणमात्रेण महान्तमानन्दम् अनुभवन्ति ।

प्रथमः—एवम्, तर्हि अहमपि भवता सह कवितापाठं श्रोतुं चलिष्यामि ।

द्वितीयः—अवश्यं चलितव्यम् ।

नेपथ्ये—विजयतां कविकुलमूर्धन्यो महामुनिः वाल्मीकिः ।

द्वितीयः—(नेपथ्ये कलकलं श्रुत्वा) वयस्य ! सम्भवतः कविजनाः समागता एव । तदेहि, आवामितः शीघ्रमेव अपसर्पावः ।

(उभौ निष्क्रान्तौ)

(महामुनिः वाल्मीकिः प्रविशति)

वाल्मीकिः—(परितो विलोक्य) अहो ! सरसमधुर-कविता-रसा-स्वादनव्याकुलेन श्रोतृसमुदायेन सर्वतः समाकुला भूमिः । परं कवयस्तु अद्यापि न समागताः ? तत् कञ्चित् कालं तेषामागमनं प्रतीक्षमाण-स्तिष्ठामि (उपविशति) ।

अहो व्यासदेवस्तु समागत एव (उत्थाय उपसर्पन्) ।

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे

फुल्लारविन्दायत-पत्रनेत्र ।

येन त्वया भारततैल-पूर्णः

प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥

व्यासः—कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।

आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥

(उभौ प्रणम्य परिष्वज्य च उपविशतः)

वाल्मीकिः—इदमवलोक्यताम्, महाकविः कालिदासोऽपि समा-गतः । स्वागतं कविवर्याय ।

व्यासः—इमे वृहन्नयीप्रणेतारः श्रीहर्षो मावः भारत्रिष्व सहेव
अम्बरतलादवतरन्ति । समागताश्च । स्वागतं स्वागतं कविवर्येभ्यः ।

कालिदासः—अहो वारुभट्टो जगद्धरभट्टश्च ! (उत्थाय उपवेशयति)

वाल्मीकिः—महाकविर्भवभूतिः ! आगम्यताम् आगम्यताम्, परिड-
राजो जगन्नाथः ! स्वागतम्, अहो महामनीषी क्षेमेन्द्रोऽपि समुपागतः !

कालिदासः—साहित्य-सङ्गीत-कलावतारः

समागतोऽसौ जयदेवसूरिः ।

सर्वे—बाढम् बाढम्, शोभनम् शोभनम् ।

वाल्मीकिः—प्रायः सर्वेऽपि सुविख्यातकीर्तयः कवयः समागता
एव । परं हास्यरसावतारो महाकविर्भासः अद्यापि न समायातः इति
किञ्चिद् विहीनमिव मे प्रतिभाति ।

(भासः हास्यमयमुद्रया प्रविशति)

सर्वे—(सोल्लासम्) अहा ! अवलोक्यताम्, भासोऽपि समा-
गत एव ।

कालिदासः—सम्प्रति भासेन समुद्भासिता नः परिषद् ।

वाल्मीकिः—(व्यासं प्रति) मुनिवर्य ! मन्ये सर्वेऽपि काव्यकला-
कुशलाः कवयः समुपागता एव । सभासदश्च अतीव कुतूहलाक्रान्तचेतसो
विलोक्यन्ते । तद् अविलम्बितमेव कार्यकलापः प्रारब्धव्य इति मे
शोभनं प्रतिभाति ।

व्यासः—आम्, सर्वथा शोभनमिदम् । तर्हि विधीयते मया सम्प्रति
कार्यक्रमस्य उपक्रमः (उत्थाय सभाभिमुखम्) माननीयाः कविवर्याः
सभासदश्च ! भवन्तः सर्वेऽपि इदं जानन्ति एव यदेतस्मिन् समारोहे
समागतानां सभ्यजनानां मनोविनोदाय स्वर्गीयसंस्कृतकवि-सम्मेलनस्य
आयोजनं विहितं वर्तते । सौभाग्यवशात् समवेताश्च प्रायेण समस्ता

अभिप्रेताः कवयः । तदेतस्याः परिषदः सभापतिपदमलङ्कृतुं मया काव्य-
कलायाः आद्यजन्मदातुः श्रीवाल्मीकिमुनिवर्यस्य पुरायाभिधानं प्रस्तावितं
त्रियते । मन्ये, भवन्तः सर्वेऽपि एतस्य हृदयेन अनुमोदनं करिष्यन्ति ।

कालिदासः—महर्षे, किमत्र वक्तव्यम् ? सर्वथा अभिनन्दनीयोऽयं
प्रस्तावः । वयं सर्वेऽपि प्रस्तावमिमं सहर्षं सादरं सबहुमानञ्च अनु-
मोदामहे ।

सर्वे—शोभनम्, अत्युत्तमम्, बाढम् ।

व्यासः—(वाल्मीकिं प्रति) ननु अलङ्क्रियतामासनमिदम् । (हस्तेन
उपवेशयति) ।

कालिदासः—(माल्यार्पणं करोति) ।

सर्वे—(तालिकां वादयन्ति) ।

वाल्मीकिः—महामान्याः ! न खलु आत्मनो गौरवावलेपेन प्रत्युत
केवल भवताम् आदेशपालनाय मया परिगृहीतोऽयं भारः । मन्ये, भवन्तः
सहयोगप्रदानेन स्थविरं मां भारवहनक्षमं करिष्यन्तीति ।

व्यासः—एष कार्यक्रमो वर्तते । (कार्यक्रमं पुरस्तात् स्थापयति) ।

वाल्मीकिः—(जनतां प्रति) आदरणीयाः सभासदः । इदानीं
कवितापाठस्य कार्यक्रमः प्रारभ्यते । तत्र सर्वेषु कार्येषु प्रथमम् ईश्वर-
स्मरणं कर्तव्यमिति अस्माकं परम्परागतः आचारः अस्ति । अतः प्रथमं
तावत् “अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः । अभाललोचनः शम्भुर्भग-
वान् बादरायणः” निजपद्यपाठेन मङ्गलाचरणं विधाय अस्मान्
अनुगृहीतान् करोतु इति मे अभ्यर्थना ।

व्यासः—अहं श्रीमद्भागवतस्य कानिचित् पद्यानि श्रावयामि ।
प्रथमं तावत् मङ्गलाचरणं पठ्यते—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मृह्यन्ति यत्सूरयः ।

तेजो-वारि-मृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृषा
घाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥

—श्रीमद्भागवतम् १, १, १

इदानीं कानिचित् गोपीगीतानि पठ्यन्ते । आनन्दकन्दस्य भगवतः
श्रीकृष्णचन्द्रस्य विरहवेदनया व्याकुलानां गोपिकानां निजदुःखनिवेदना-
त्मकानि इमानि गीतानि—

जयति तेऽधिकं जन्मना ब्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका—
स्त्वयि घृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥
प्रहसितं प्रियं प्रेमवीक्षण
विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् ।
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः
कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥
दिनपरिक्षये नीलकुन्तलै-
र्वनरुहाननं विभ्रदावृतम् ।
घनरजस्वलं दर्शयन् मुहु-
र्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥
प्रणत-कामदं पद्मजाचितं
घरणि-मण्डनं ध्येयमापदि ।
चरण-पङ्कजं शन्तमं च ते
रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥

—११—१०, ३१, १, १०, १२, १३

अन्ते एकं निवेदनम्—

निगम-कल्पतरुर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रव-संयुतम् ।

पिबत भागवतं रसमालयं

मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥

—११—१, १, ३

वाल्मीकिः—श्रुता भवद्भिः महामुनेर्व्यासस्य भक्तिरसामृतवर्षिणी कविता । इदानीं कविकुल-कुमुद-कलानिधिः कालिदासः स्वकीयेन शृङ्गाररसामृत-वर्षणेन भवतः रससागरे आप्लावयिष्यति । तत् क्षणं सावधानास्तिष्ठत ।

(सर्वे हसन्ति)

कालिदासः—माननीयैः अर्घ्यक्षमहौदयैः शृङ्गाररसामृतवर्षणाय आदिष्टोऽस्मि, परं वर्षा तु मेघं विना न भवति । अतस्तावत् मेघदूतस्य कानिचित् पद्यानि परिषदः सेवायाम् उपस्थाप्यन्ते—

कश्चित् कान्ता-विरह-गुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः
शापेनास्तंगमित-महिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ।
यक्षश्रुके जनक-तनया-स्नान-पुण्योदकेषु
स्निग्धच्छाया-तरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु ॥

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबला-विप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान् कनक-वलयभ्रंश-रिक्त-प्रकोष्ठः ।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडा-परिणत-गज-प्रेक्षणीयं ददर्श ॥

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाघान-हेतो-
रन्तवर्षिपश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ ।
मेवालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेष-प्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घ्यं तस्मै
प्रीतः प्रीति-प्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥

धूम-ज्योतिः-सलिल-मरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाऽचेतनेषु ॥

—मेघदूतम्. १-५.

इदानीं खलु अभिज्ञानशाकुन्तलस्य पद्यद्वयं श्रूयताम् । महाराजो
दुःख्यन्तः शकुन्तलाया अकृत्रिमं रूपलावण्यं दृष्ट्वा कथयति—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥

—अभिज्ञानशाकुन्तलम्. १ १६.

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम् ॥

„—१. २०

भूयान् समयो मया गृहीतः । अतो विरम्यते तावत् सम्प्रति ।

वाल्मीकिः—केचन काव्यरसिकाः ऋतुसंहारस्यापि कानिचित्
पद्यानि श्रोतुं समीहन्ते ।

कालिदासः—अस्तु, तदपि श्रूयताम् । वसन्तवर्षानमिदं मेकं
तावत्—

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं

स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः ।

सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः

सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते ॥

ऋतुसंहारम् ६, २

इदमेकं शरदो वर्णनम् —

कासैर्मही शिशिरदीधितिना रजन्यो

हंसैर्जलानि सरितां कुमुदैः सरांसि ।

समच्छदैः कुसुम-सार-नतैर्वनान्ताः

शुक्लीकृतान्युपवनानि च मालतीभिः ॥

ऋतुसंहारम् ३, २

व्यासः—कुमारसम्भवस्यापि कश्चित् प्रसङ्गः पठनीयो भवद्भिः ।

कालिदासः—शिवपार्वतीविवाहे वरयात्राया अवलोकनाय त्वर-
माणानां रमणीनां कानिचित् कुतूहलजनकानि चेष्टितानि वर्णयन्ते ।

आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिदुद्वेष्टन-वान्त-मात्यः ।

बद्धं न संभावित एव तावत् करेण रुद्धोपि च केशपाशः ॥

प्रसाधिकालम्बितमग्रपादम् आक्षिप्य काचिद् द्रवरागमेव ।

उत्सृष्ट-लीला-गतिरागवाक्षात् अलक्तकाङ्कां पदवीं ततान ॥

विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन संभाव्य तद्वञ्चित-वाम-नेत्रा ।

तथैव वातायन-सन्निकर्षं ययौ शलाकामपरां वहन्ती ॥

जालान्तर-प्रेषित-दृष्टिरन्या प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम् ।

नाभिप्रविष्टाभरण-प्रभेण हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वासः ॥

अर्घाचिता सत्वसमुत्थितायाः पदेपदे दुर्निमिते गलन्ती ।

कस्याश्चिदासीद् रसना तदानीम् अङ्गुष्ठमूलार्पित-सूत्र-शेषा ॥

अन्तिमं पद्यम्—

तासां मुखैरासव-गन्धगर्भैर् व्याप्नाम्तराः साम्द्र-कुतूहलानाम् ॥
विलोल-नेत्र-भ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्र-पत्राभरणा इवासन् ॥

कुमारसम्भवम् ७, ५७-६२

(सर्वे तालिकां वादयन्ति)

वाल्मीकिः—इदानीं स्वकीयेन अनुपमेन स्वरमाधुर्येण सर्वेषां
हृदयाकर्षको महाकविरश्वघोषः श्रीमतां पुरस्तादुपस्थितो भवति । अयं
न केवलं कविः प्रत्युत महान् गायकोऽपि । भवन्तः सम्प्रति एतस्य
कोकिलकण्ठध्वनिमाधुरीसुधास्वादसुखमनुभवन्तु ।

अश्वघोषः—एष कवितायाः प्रसङ्गो वर्तते । भगवतो गीतमबुद्धस्य
कनिष्ठो भ्राता सुन्दरनन्दः अस्ति । स संन्यासं गृहीत्वापि पुनः गृहस्थ-
धर्मे प्रवेष्टुमिच्छति । इमां तस्य दयनीयां दशां दृष्ट्वा तस्य धर्मशिक्षको
भिन्नप्रवरो मैत्रेयः प्राणिनां रागप्रवणतायाः प्राबल्यविषयं विचिन्तयति—

अथ तस्य निशम्य तद्वचः प्रियभार्याभिमुखस्य शोचतः ।
श्रमणः स शिरः प्रकम्पयन् निजगादात्मगतं शनैरिदम् ॥
कृपणं बत यूथलालसो महतो व्याधभयाद् विनिःसृतः ।
प्रविविक्षति वागुरां मृगश्रपलो गीतरवेण वञ्चितः ॥
विहगः खलु जालसंवृतो हितकामेन जनेन मोचितः ।
विचरन् फलपुष्पवद् वनं प्रधिविक्षुः स्वयमेव पञ्जरम् ॥
कलभः करिणा समुद्धृतो बहुपङ्काद् विषमान्नादीतलात् ।
जलतर्षवशेन तां पुनः सरितं ग्राहवतीं तितीर्षति ॥
शरणे सभुजङ्गमे स्वपन् प्रतिबुद्धेन परेण बोधितः ।
तरुणः खलु जातविभ्रमः स्वयमुग्रं भुजगं जिघृक्षति ॥

महता खलु जातवेदसा ज्वलितादुत्पतितो वनद्रुमात् ।
 पुनरिच्छति नीडतृष्णया पतितुं तत्र गतव्यथो द्विजः ॥
 अवशः खलु काममूर्च्छया प्रियया श्येनभयाद् विनाकृतः ।
 न धृतिं समुपैति न ह्रियं करुणं जीवति जीवजीवकः ॥
 अकृतात्मतया तृषान्वितो घृणया चैव घिया च वर्जितः ।
 अशनं खलु वान्तमात्मना कृपणः श्वा पुनरत्तुमिच्छति ॥

सौन्दरनन्दम् ८, १४-२१

इदानीं हिमालयस्य वर्णनमवलम्ब्य कानिचित् पद्यानि श्रूयन्ताम्-
 बह्वायते तत्र सिते हि शृङ्गे संक्षिप्तबर्हः शयितो मयूरः ।
 भुजे वलस्यायत-पीन-बाहोः वैदूर्यकेयूर इवावभासे ॥
 मनः शिलाघातुशिलाश्रयेण पीतीकृताङ्गो विरराज सिंहः ।
 सन्तप्तचामीकरभक्तिचित्रं रुप्याङ्गदं शीर्णमिवाम्बरस्य ॥
 चलत्कदम्बे हिमवन्नितम्बे तरौ प्रलम्बे चमरो ललम्बे ।
 छेतु विलग्नं न शशाक वालं कुलोद्गतः प्रीतिमिवायवृत्तः ॥
 सुवर्णगौराश्च किरातसंघा मयूरपिच्छोज्ज्वल-गात्ररेखाः ।
 शार्दूलपातप्रतिभा गुहाभ्यो निष्पेतुरुद्गार इवाम्बरस्य ॥

दरीचरीणामतिसुन्दरीणां मनोहर-श्रोणि-कुचोदरीणाम् ।
 वृन्दानि रेजुर्दिशि किन्नरीणां पुष्पोत्किराणामिव वल्लरीणाम् ॥

„—१०, ८-६, ११-१३

वाल्मीकिः — सम्प्रति सुकुमारवस्तुनि साहित्ये तथा कठोरं तर्क-
 शास्त्रे उभयत्र लब्धप्रकर्षो महाकविः श्रीहर्षः समागच्छति । भवन्तः
 एतस्य नव-नव-कल्पनाशतप्रसव-प्रगल्भायाः लेखन्याः चमत्कारं पश्यन्तु ।
 (श्रीहर्षं प्रति) आगम्यतां महाकवे !

श्रीहर्षः—अस्मत्काव्यनायकस्य नलस्य वर्णनमुद्दिश्य विरचितानि
कानिचित् पद्यानि इदानीं श्राव्यन्ते—

एतस्य विद्याया वर्णनं तावत्—

अमुष्य विद्या रसनाग्र-नर्तकी त्रयोव नीताङ्गुणेन विस्तरम् ।
अगाहताष्टादशतां जिगीषया नव-द्वय-द्वीप-पृथग्जलश्रियाम् ॥

प्रतापस्य वर्णनमिदम्—

यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः स्फुरत्प्रतापानल धम-मञ्जिम ।
तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधौ ॥

तस्य दिगन्तव्याप्ताया विजयश्रियो वर्णनम्—

सितांशुवर्णैर् वयतिस्म तद्गुणैर् महामि-वेम्नः सहकृत्वरी बहूम् ।
दिग्ङ्गनाङ्गावरणं रणाङ्गणे यशःपटं तद्भट-चातुरी तुरी ॥

सूर्यस्य चन्द्रमसश्च यदाकदाचित् परिवेषो दृश्यते वियति । स कथं
कदा च जायते इत्याह—

तदोजमस्तद्यशसः स्थिताविमौ वृथेति चित्ते कुरुते यदा यदा ।
तनोति भानोः परिवेषकैतवात् तदा विधिः कुण्डलनां विधोरपि ॥

तदीयसौन्दर्यस्य वर्णनम्—

अथाग्निपद्मेप् तद्विघ्नणाघृणा क्व तच्छय-च्छाय-लवोऽपि पल्लवे ।
तदास्य-दास्येऽपि गतोघ्निकागितां न शारदः पार्विक-शर्वरीश्वरः ॥

— नैषधीयचरितम्, १, ५, ८, १२, २०

अथेदानीं कानिचित् पद्यानि दमयन्तीवर्णनपराण्यपि आकर्णयन्तु
भवन्तः । अन्यथा पक्षपातः स्यात् । हंसः नलाय दमयन्त्याः परिषयं
ददाति—

भुवनत्रय-सुभ्रुवामसौ दमयन्ती कमनीयता-मदम् ।

उदियाय यतस्तनुश्रिया दमयन्तीति ततोऽभिधां दधौ ॥

हृत-सारमिवेन्दु-मण्डलं दमयन्ती-वदनाय वेधसा ।
कृत-मध्य-विलं विलोक्यते घृत-गम्भीर-खनी-ख-नीलिम ॥

अन्यच्च —

घृत-लाञ्छन-गोमयाञ्चितं विधुमालेपन-पाण्डुरं विधिः ।
भ्रमयत्युचितं विदर्भजाऽनन-नीराजन-वर्धमानकम् ॥
घनुषी रति-पञ्चबाणयोऽदिते विश्वजयाय तद्भ्रुवौ ।
नलिके न तदुच्च-नासिके त्वयि नालीक-विमुक्ति-कामयाः ॥

„—२; १८, २५, २६, २८



चाल्मीकिः—अतःपरं शिशुपालवधमहाकाव्यप्रणेतुः श्री माघकवेः
कविताश्रवणसुखमनुभवन्तु भवन्तः । सुरभारतीपद्यानि अर्थज्ञानं विनापि
कीदृशानि मनोहराणि श्रवणसुखदानि च भवन्ति इति माघकवेर्मुखात्
श्रूयताम् —

माघः—वसन्तवर्णनमवलम्ब्य कानिचित् पद्यानि पठ्यन्ते—
नव-पलाश-पलाश-वनं पुरः स्फुट-पराग-परागत-पङ्कजम् ।
मृदुलान्त-लतान्तमलोकयत् स सुरभि सुरभि सुमनोभरैः ॥
वदन-सौरभ-लोभ-परिभ्रमद्-भ्रमर-संभ्रम-संभृत-शोभया ।
चलितया विदधे कलमेखला-कलकलोऽलकलोललदृशाऽन्यया ॥
मधुरया मधु-बोधित-माघवी-मधु-समृद्धि-समेधित-मेघया ।
मधुकराङ्गन्या मुद्गरुन्मद-ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥

—शिशुपालवधम् ६, २, १४, २०

एकं तावद् वर्षायाः वर्णनम्—

नव-कदम्ब-रजोरुणिताम्बरै-रधि-पुरन्ध्र शिलीन्ध्र-सृगन्धिभिः ।
मनसि रागवतामनुरागिता नवनवा वनवायुभिरादधे ॥

„ ६, ३२

इदानीं तावत् क्षणं मधुशालायामुपस्थीयताम्—एकः भ्रमरः मधु-
शालायामागच्छति । स निश्चयं कतुं न पारयति; मदिरापात्रे गच्छामि
अथवा रमणीनां मुखोपरि ।

कापिशायन-सुगन्धि विघूर्णन् उन्मदोऽधिशयितुं समशेत ।
फुल्लदृष्टिवदनं प्रमदानाम् अब्जचारुचपकं च षडंघ्रिः ॥

„—१०, ४

रमण्यः मदिरापानेन विलुप्तरागं निजम् अघरोष्ठं चुम्बनद्वारा
प्रियतमाघरसंलग्नेन लाक्षारसेन रञ्जितं कुर्वन्ति—

पान-घौत-नव-यावकरागं सुभ्रुवो निभृतचुम्बन-दक्षाः ।
प्रेयसामघर-राग-रसेन स्वं किलाघरमुपालि ररञ्जुः ॥

अतः परं प्रभातवर्णनप्रसङ्गे सूर्यस्य बाल्यावस्थायाः वर्णनम् पठ्यते ।
इदं खलु अन्तिमं पद्यं वर्तते ।

उदय-शिखरि-शृङ्ग-प्राङ्गणेष्वेषु रिङ्गन्

सकमल-मुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः ।

विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः

परिपतति दिवोऽङ्गे हेलया बालसूर्यः ॥

„—११, ४७

वाल्मीकिः—माघस्य शीतलेन वातावरणेन शैत्यमनुभवतां जनानां
कृते रवेः भासः अतिशयं प्रिया भवन्ति । अतो मया सभासदां हिताय
सम्प्रति प्रखरप्रतिभाकरो महाकविः भारविः समाहूयते ।

भारविः—कोरवैः सह सहसा युद्धकरणाय सन्नद्धं भीमसेनं
युधिष्ठिरः सान्त्वयति नीतिं च उपदिशति—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥
अभिवर्षति योऽनुपालयन् बिधिबीजानि विवेकवारिणा ।
स सदा फलशालिनीं क्रियां शरदं लोक इवाघतिष्ठति ॥
शुचि भूषयति श्रुतं वपुः प्रशमस्तस्य भवत्यलङ्क्रया ।
प्रशमाभरणं पराक्रमः स नयापादित-सिद्धि-भूषणः ॥
मतिभेद-तमस्तिरोहिते गहने कृत्यविधौ विवेकिनाम् ।
सुकृतः परिशुद्ध आगमः कुरुते दीप इवाथंदर्शनम् ॥

किरातार्जुनीयम्. २; ३०-३३.

अथ च—

स्पृहणीयगुणैर्महात्मभिश्चरिते वर्त्मनि यच्छतां मनः ।
विधिहेतुरहेतुरागसां विनिपातोऽपि समं समुन्नतेः ॥

अतः—

अतिपातित-कालसाधना स्वशरीरेन्द्रिय-वर्ग-तापिनी ।
जनवन्न भवन्तमक्षमा नयसिद्धेरपनेतुमर्हति ॥

„—२, ३०-३४, ४२,

इदानीं वसन्तवर्णानात्मकं पद्यद्वयं पठ्यते, ध्यानं दीयताम्—

कुसुम-नग-वनान्युपैतुकामा

“ किसलयिनीमबलम्ब्य चूतयष्टिम् ।

कणदधिकुल-नूपुरा निरासे

नलिनवनेषु पदं वसन्तलक्ष्मीः ॥

विकसित-कुसुमाघरं हसन्तीं

कुरवक-राजि-वधूं विलोकयन्तम् ।

ददृशुरिव सुराङ्गना निषण्णं

सशरमनङ्ग—मशोक—पल्लवेषु ॥

„—१०, ३१, ३२

वाल्मीकिः—मन्ये, केवलं शृङ्गाररसप्रधानानां कवितानां श्रवणेन अलसायमाना इव सभासदः संवृत्ताः । तदेतेषु स्फूर्तिसञ्चाराय अहं महाकवेर्भट्टनारायणस्य उपस्थितिं समभ्यर्थये । एतस्य ओजस्विनी कविता सर्वेषु वीररसस्य सञ्चारं करिष्यतीति मे दृढो विश्वासः ।

भट्टनारायणः—दुर्योधनेन सह युधिष्ठिरद्वारा क्रियमाणां सन्धि-वार्तां श्रुत्वा कुपितस्य भीमसेनस्य सहदेवं प्रति उक्तिः—

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपात्
दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः ।
सञ्चूर्णयामि गदया न सुयोधनोरु
सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन ॥
—त्रेणीसंहारम् १, १५,

सभायां दुःशासनद्वारा निजकेशाकर्षणवृत्तान्तं स्मृत्वा परितप्यमानां द्रौपदीं प्रति भीमस्य आश्वासनम्—

चञ्चद्-भुज अमित-चण्ड-गदाभिघात-
सञ्चूर्णितोरु-युगलस्य सुयोधनस्य ।
स्त्यानावनद्ध-घन-शोणित-शोण-पाणिः
उत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि ! भीमः ॥

„—१, २१

भगवता वासुदेवेन वाद्यमानां रणदुन्दुभि परेण वाद्यमानां मत्वा भीमसेनस्य क्रोधामर्षमयी दपोंक्तिरियम्—

मन्यायस्ताऽर्णवाम्भः-प्लुत-कुहर-चलन्मन्दर-ध्वान-धीरः ।
कोणाघातेषु गर्जत्-प्रलय-घनघटाऽन्योन्य-संघट्ट-चण्डः ॥
कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुल-निघनोत्पात-निर्घात-वातः ।
केनास्मत्सिहनाद-प्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडितोऽयम् ॥

„—१, २२,

वाल्मीकिः—इदानीं श्रीरामचन्द्रस्य उत्तरचरितानुकीर्तने संदर्शित-
कवित्व-कौशलः, संस्कृतसाहित्यजगतो महाविभूतिर्भवभूतिः भवतां
पुरस्तात् उपस्थितो भवति । एतस्य करुणारसप्रवाहपूर्णानि पद्यानि
तावत् शृण्वन्तु भवन्तः ।

भवभूतिः सीतापरित्यागानन्तरं तस्या विरहवेदनया व्याकुल-
चेतसः श्रीरामचन्द्रस्य निजदयनीयदशाया वर्णनम्—

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा न तु भिद्यते
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम् ।
ज्वलयति तनुमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥

—उत्तररामचरितम् ३. ३१

वेलोल्लोल—क्षुभितकरुणोज्ज्वम्भण—स्तम्भनार्थं
यो यो यत्नः कथमपि समाधोयते तं तमन्तः ।
हित्वा भित्त्वा प्रसरति बलात् कोऽपि चेतोविकारः
तोयस्येवाप्रतिहतरयः सैकतं सेतुमोघः ॥

„—३, ३६

हा हा देवि स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि ॥
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विश्वङ् मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ॥

„—३, ३८

भगवता रामचन्द्रेण परित्यक्तायाः सीताया विरहदशावर्णनं
श्रावयित्वा विरमामि ।

परिपाण्डु-दुर्बल-कपोल-सुन्दरं

दधती विलोककबरीकमाननम् ।

करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी
विरहव्यथेव वनमेति जानकी ॥

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद् विप्रलूनं
हृदय-कमल-शोषी दारुणो दीर्घशोकः ।
ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्याः शरीरं
शरदिज इव घर्मः केतकीपत्रगर्भम् ॥

„—३, ४, ५

वाल्मीकिः—कविता द्विविधा भवति पद्यमयी गद्यमयी च । एत-
त्कालपर्यन्तं भवद्भिः केवलं पद्यमयी कविता श्रुता । इदानीं संस्कृत-
गद्यसाहित्यसम्प्राट् महाकविर्बाणभट्टः गद्यमयीं कवितां श्रावयिष्यति ।
भवन्तः सम्प्रति कलकलनिनादेन सह निरर्गलधारया प्रवहन्त्यां संस्कृत-
गद्य—साहित्यसुधासरस्वत्याम् अवगाहनस्य आनन्दमनुभवन्तु ।

वाणभट्टः—महानुभावाः ! केचन आधुनिका जना मम काव्यस्य
समासबहुलतया अतिशयलम्बमानानि वाक्यानि आकर्ण्य आकुलचेतसो
भवन्तीति मया सम्प्रति समासविरहित एव अंशः श्रीमतां सेवायामुप-
स्थाप्यते ।

वाल्मीकिः—महाकवे ! समासस्तु संस्कृतकाव्यबन्धस्य ओजस्वि-
तायाः तथा संक्षेपेण विस्तृतार्थप्रकटीकरण-सामर्थ्यस्य एकम् अनन्य-
भाषासाधारणं वैशिष्ट्यं वर्तते । तद् वयं समस्तपदसमुच्चयसमञ्चित-
मेव भवत्काव्यं श्रोतुं समीहामहे ।

वाणभट्टः—अस्तु तावत् । तादृशी एव रचना कर्णगोचरीक्रियतां
काव्यरसिकैः । आदौ तावत् महाराजशूद्रकस्य वर्णनम् । मातङ्गकुमारी
सभायां प्रविश्य कीदृशं राजानं ददर्श इति प्रसङ्गे महाराजशूद्रकस्य
वर्णनाया अयमेकः अंशः—

प्रविश्य च सा (मातङ्गकुमारी) नरपतिसहस्र-मध्यवर्तिन-
मशनिभय-पुञ्जितकुलशैल-मध्यगतमिव कनकशिखरिणम्, अनेक-
रत्नाभरण-किरणजालकान्तरितावयवमिन्द्रायुधसहस्र-संछादिताऽ
ष्टदिग्भागमिव जलधरदिवसम्, अवलम्बित-स्थूल-मुक्ताकला-
पस्य कनकशृङ्खलानियमित-मणिदण्डिकाचतुष्टयस्य गगनसिन्धु-
फेनपटलपाण्डुरस्य नातिमहतो दुकूलवितानस्य अधस्तादिन्दु-
पर्यङ्किका-निषण्णम्, उद्ध्यमान-सुवर्णदण्डचामर-कलापम्, उन्म-
यूख-मुखकान्ति-विजयपराभव-प्रणत-शशिनीव स्फटिकपादपीठे
वियस्तवामपादम्, इन्द्रनीलमणि-कुट्टिमप्रभासम्पर्क-श्यामायमानैः
प्रणतरिपु-तिःश्वास-मलिनीकृतैरिव चरणनख-मयूखजालैरुपशोभ-
मानम्, आसनोल्लसित-पद्मरागकिरण-पाटलीकृतेन अचिरमृदित-
मधुकैटभ-रुधिरारुणेन हरिमिवोरुयुगलेन विराजमानम्, अमृत-
फेनघवले गोरोचनालिखित-हंसमिथुन-सनाथपर्यन्ते चारुचामर-
वायु-प्रनर्तितान्तदेशे दुकूले वसानम्,आमोदिमालती कुसुम-
शेखरमुषसि शिखर-पर्यस्त-तारका-पुञ्जमिव पश्चिमाचलम्,
आभरण प्रभा-पिशङ्गिताङ्गतया लग्नहरहुताशनमिव मकरध्वजम्,
आसन्नवर्तिनभिः सर्वतः सेवार्थमागताभिरिव दिग्बधूभिर्वार-
विलासिनीभिः परिवृतम्, अमलमणिकुट्टिम-संक्रान्तसकलदेह-
प्रतिविम्बतया पतिप्रेम्णा वसुन्धरया हृदयेनेवोह्यमानम्, अशेष-
जनभोग्यतामुपनीतयाऽप्यसाधारणया राजलक्ष्म्या समालिङ्गित-
देहम्, मन्नादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपि कलत्र-
वल्लभम्, अविरतप्रवृत्तदानमपि अमदम्, अत्यन्तशुद्धस्वभावमपि
कृष्णचरितम्, अकरमपि हस्तस्थितभुवनतलं राजानमद्राक्षीत् ।

— कादम्बरी, पूर्वाद्ध

एकः चन्द्रापीडस्य नगरप्रवेशसमये तद्दर्शनार्थं समुत्करिष्ठतचेतसां
युवतीनां वर्णनात्मकः प्रसङ्गः श्राव्यते ।

अनन्तरं च “समाप्तसकलविद्यो विद्यागृहात् निर्गतोऽयं चन्द्रा-
पीडः” इति समाकर्ष्य आलोकनकुतूहलिन्यः सर्वस्मिन्नेव नगरे
ससम्भ्रमम् उत्सृष्टार्धपरिसमाप्त-प्रसाधनव्यापाराः, काश्चित् वाम-
करतलगतदर्पणाः स्फुरितसकलरजनिकरमण्डला इव पौर्णमासी-
रजन्यः, काश्चिद् आर्द्रालक्तकरस-पाटलितचरणपुटाः कमलपरि-
वीतबालातपा इव रजन्यः, काश्चित् ससम्भ्रमगतिविकलित-मेख-
लाकलापाकुलित-चरणकिसलयाः शृङ्खलासन्दानमन्दसंचारिण्य
इव करिण्यः, काश्चित् जलधरसमयदिवसश्रिय इव इन्द्रायुधरागरु-
चिराम्बरधारिण्यः, काश्चित् उल्लसित-धवल-नखमयूखपल्लवान्-
पुररवाकृष्टगृहकलहंसकानिव चरणपुटानुद्वहन्त्यः, काश्चित् करत-
लस्थितस्थूलहारयष्टयो रतिमिव मदनविनाश-शोक-गृहीतस्फटि-
काक्षवलयो विडम्बयन्त्यः, काश्चित् पयोधरान्तराल-गलितमुक्ता-
लताः तनुविमलस्रोतोजलान्तरितचक्रवाकमिथुना इव प्रदोषश्रियः,
काश्चित् तूपुरमणिसमुत्थितेन्द्रायुधतया परिचयानुगतगृहमयूरिका
इव विराजन्त्यः, काश्चित् अर्धपीतोज्ज्वलित-मणिचषकाः स्फुरितरा-
गैर्मधुरसमिवाधरपल्लवैः क्षरन्त्यो हर्म्यंतलानि ललनाः समा-
रुरुहुः ।

—कादम्बरी, पूर्वाद्ध

वाल्मीकिः अतः परं संस्कृतसाहित्ये सर्वाधिकनाटकानां सफल-
प्रेरणा कथाकविर्भासः काश्चित् हासमयान् प्रसङ्गान् उपस्थापयिष्य-
तीति मे विश्वासः ।

भासः—यदि यथार्थो विश्वासस्तर्हि अवश्यं फलदायको भविष्यति-
“विश्वासः फलदायकः” ।

वत्सराजस्य विवाहवृत्तान्तं श्रुत्वा विदूषकस्योक्तिः—

भोः दिष्ट्या तत्रभवतो वत्सराजस्य अभिप्रेतविवाहमङ्गल-

रमणीयः कालो दृष्टः । भोः को नाम एतज्जानाति तादृशे वयमनर्थ-
सलिलावर्ते प्रक्षिप्ताः पुनरुन्मड्क्ष्याम इति । इदानीं प्रासादेषु
उष्यते, अन्तःपुरदीर्घिकासु स्नायते, प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि
मोदकखाद्यानि खाद्यन्ते इति अनप्सरस्संवास उत्तरकुरुवासो
मयाऽनुभूयते । एकः खलु महान् दोषः, मम आहारः सुष्ठु न
परिणमति, सुप्रच्छदनायां शय्यायां निद्रां न लभे । यथा वात-
शोणितमभित इव वर्तते इति पश्यामि । भोः सुखं न आमय-
परिभूतम् अकल्यवर्तं च ।

—स्वप्नवासवदत्तम्

पुनश्च राजानं दृष्ट्वा—

ही ! ही ! प्रचित-पतित-बन्धुजीव-कुसुम-विरलपात-रम-
णीयं प्रमदवनम् । इस्तस्तावद् भवान् ।

ही ! ही ! शरत्काल-निर्मलेऽन्तरिक्षे प्रसारित-वलदेवबाहु-
दर्शनीयां सारसपंक्तिं तावत् समाहितं गच्छन्तीं पश्यतु भवान् ।

”—

पुनश्च राजानम्—

इदानीं शृणोतु भवान् । तत्रभवती वासवदत्ता मे बहुमता ।
तत्रभवती पद्मावती तरुणी दर्शनीया अकोपना अनहङ्कारा
मधुरवाक् सदाक्षिण्या । अयं चापरो महान् गुणः, स्निग्धेन भोज-
नेन मां प्रत्युद्गच्छति वासवदत्ता-कुत्र नु खलु गत आयवसन्तक
इति ।

”—

वाल्मीकिः— इदानीं तावत् केवलं गद्य-पद्य-पाठ-श्रवणेन परि-
श्रान्तानां सभासदां विनोदाय मया मध्ये विश्वविश्रुतनामधेयस्य

महाकवेर्जयदेवस्य नाम प्रस्तूयते । अयं महानुभावः ललितकोमलकान्त-
पदावली-निबद्धेन एकेन सरसमधुरेण गीतेन भवतां मनोविनोदं
करिष्यति ।

कवयः—शोभनम् शोभनम् ।

सभासदः—(तालिकां वादयन्ति)

जयदेवः—भगवतो नन्दनन्दनस्य श्रीकृष्णचन्द्रस्य एकं संक्षिप्तं
वसन्तविहार-वर्णनं समाकर्णयन्तु भवन्तः ।

विहरति हरिरिह सरसवसन्ते ।

नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते ॥ वि०

ललित-लवङ्गलता-परिशोलन-कोमल-मलय-समीरे ।

मधुकर-निकर-करम्बित-कोकिल-कूजित-कुञ्ज-कुटोरे ॥

उन्मद-मदन-मनोरथ-पथिक-वधूजन-जनित-विलापे ।

अलिकुल-सङ्कुल-कुसुम-समूह-निराकुल-बकुलकलापे ।

मृगमद-सौरभ-रभस-वशंवद-नव-दल-माल-तमाले ।

युवजन-हृदय-विदारण-मनसिज-नख-रुचि-किंशुक-जाले ॥

अन्तिमं पद्यम्—

श्रीजयदेव-भणितमिदमुदयति हरिचरण-स्मृति-सारम् ।

सरस-वसन्तसमय-वनवर्णनमनुगत-मदन-विकारम् ॥ वि०

—गीतगोविन्दम्

(गन्तुं प्रवृत्तः)

सभासद—एकम् अपरमपि गीतम् ।

वाल्मीकिः—सभासदाम् अनुरोधः पालनीयः ।

जयदेवः—सभापतेः आज्ञाऽपि पालनीया एव । तत् एकम्
अपरमपि संक्षिप्तं गीतं श्रावयामि ।

रासे हरिमिह विहित-विलासम्
स्मरति मनो मम कृतपरिहासम् ।

सञ्चरदधर-सुधा-मधुर-ध्वनि-मूखरित-मोहन-वंशम् ।
चलित-दृगञ्चल-चञ्चल-मौलि-कपोल-विलोल-वतंसम् ॥ रासे०
चन्द्रक-चारु-मयूर-शिखण्डक-मण्डल-वलयित-केशम् ।
प्रचुर-पुरन्दर-धनुरनुरञ्जित-मेदुर-मुदिर-सुवेशम् ॥
गोप-कदम्ब-नितम्बवती-मुख-चुम्बन-लम्भित-लोभम् ।
बन्धुजीव-मधुराधर-पल्लव-मुल्लसित-स्मित-शोभम् ॥
श्री जयदेव-भणितमतिसुन्दर-मोहन-मधुरिपु-रूपम् ।
हरिचरणस्मरणं प्रति सम्प्रति पुण्यवतामनुरूपम् ॥

”

वाल्मीकिः—संस्कृतच्छन्दस्सु एकम् आर्यानामकं छन्दो भवति ।
तत्सम्बन्धे श्रूयते—

सरसा सालङ्कारा सुपदन्यासा विचित्रपदललिता ।
आर्या तथैव भार्या न लभ्यते पुण्यहीनेन ॥

अतिशयपुण्यभाजो वयं यदत्र आर्याछन्दसः सफलप्रयोक्ता महाकविः
गोवर्धनाचार्यः आर्यासप्तशतीप्रणेता अपि समागतो वर्तते । तत् सम्प्रति
वयं कानिचित् आर्याछन्दांसि शृणुमः । (कवि प्रति) एहि आचार्यवयं ?

गोवर्धनः—आदौ तावत् केषाञ्चित् कवीनां स्तुतयः श्राव्यन्ते—
विहित-घनालङ्कारं विचित्र-वर्णावलीमय-स्फुरणम् ।
शक्रायुधमिव वक्रं वल्मीकभुवं कविं नौमि ॥

व्यासगिरां निर्यासं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे ।
भूषणतयैव संज्ञां यदङ्कितां भारती वहति ॥

साकूत-मधुर-कोमल-विलासिनी-कण्ठ-कूजितप्राये ।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रतलीला-कालिदासोक्ती ॥

भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति ।
एतत्कृत-कारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥

जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो वभूवेति ॥

इदानीं काश्चित् अन्याः सूक्तयः पठ्यन्ते । यथा कस्यचित् नायकस्य
कृपितनायिकां प्रति उक्तिः—

रोषोऽपि रसवतीनां न कर्कशो वा चिरानुबन्धी वा ।
वर्षाणामुपलोऽपि हि सुस्निग्धः क्षणिककल्पश्च ॥

कश्चित् कस्यचित् निरर्थकम् अधिकारपदं तिन्दति—

यन्नोपकारकं यत् न भूषणं यत् प्रकोपमातनुते ।
गुरुणापि तेन कार्यं पदेन किं श्लीपदेनेव ॥

कमपि सरलस्वभावं पुरुषं कश्चन उपदिशति—

यत्रार्जवेन लघुता गरिमाणं यत्र वक्रता तनुते ।
छन्दः शास्त्र इवास्मिन् लोके सरलः सखे किमसि ॥

दुर्जनस्य संपत्तिविषये इयमेका उक्तिः—

सन्ताप-मोह-कम्पान् सम्पातयितुं निहन्तुमपि जन्तून् ।
सखि ! दुर्जनस्य भूतिः प्रसरति दूरं ज्वरस्येव ॥

अथ गुणरहितपुरुषाणां सम्बन्धे उक्तिरेका श्रूयताम्—

सुगृहीत-मलिन-पक्षा लघवः परभेदिनः परं तीक्ष्णाः ।
पुरुषा अपि विशिखा अपि गुणच्युताः कस्य न भयाय ॥

धनसम्पन्नायाः स्त्रियाः सर्वेऽपि दोषाः क्षन्तव्या एव भवन्ति—

शोलित-भुजग-भोगा क्रोडेनाऽभ्युद्धृतापि कृष्णेन ।
अचलैव कीर्त्यते भूः किमशक्यं नाम वसुमत्याः ॥
—आर्यासप्तशती

वाल्मीकिः— इदं श्रुत्वा सभासदः प्रमुदिता भबिष्यन्ति यत् तेषां मनोविनोदाय इदानीम् अनेकमुक्तककाव्यानां प्रणेता महाकविः श्री नीलकण्ठदोक्षितमहाशयः समुपस्थितो भवति । अयं महानुभावः सम्प्रति विविधभावव्यञ्जकैः मनोरञ्जकैः मुक्तकश्लोकैः भवतां मनो विनोदयिष्यति ।

(सर्वे तालिकां वादयन्ति)

नीलकण्ठदीक्षितः—आदौ तावत् एकं मङ्गलाचरणं पठ्यते—
यत्र भार्यागिरो वेदा यत्र धर्मोऽर्थसाधनम् ।
यत्र स्वप्रतिभा मानं तस्मै श्रीकलये नमः ॥

केचन जनाः अज्ञाता एव मूषकवद् धनं भक्षयन्ति । तेभ्यो भवन्तः सम्यक् सावधाना भवन्तु—

जामातरो भागिनेया मातुला दारबान्धवाः ।
अज्ञाता एव गृहिणां भक्षयन्त्याखुवद् गृहे ॥

ज्योतिषशास्त्रे जन्मकालीन-ग्रहानुसारं धनदारिद्र्य-योगो लिखितो वर्तते । परन्तु सम्प्रति तद्भिन्न एव योगो धनं दरिद्रतां वा करोति । स चायं वर्तते

अनृतं चाटुवादश्च धनयोगो महानयम् ।
सत्यं वैदुष्यमित्येष योगो दारिद्र्यकारकः ॥

शरीरे अन्तःस्थितान् पंच प्राणान् सर्वे जना जानन्ति । इदानीं शरीराद् बहिः स्थितान् पंच प्राणान् शृणुत ?

गृहिणी, भगिनी तस्याः, श्वसुरौ, व्याल इत्यग्नि ।

प्राणिनां कलिना सृष्टाः पञ्च प्राणा इमेऽपरे ॥

ज्योतिर्विदां कृते एका शुभसम्मतिः दीयते । तेषामेतेन महान्
लाभो भविष्यति—

सर्वं कोटिद्वयोपेतं सर्वं कालद्वयावधि ।

सर्वं व्यामिश्रमिव च वक्तव्यं दैवचिन्तकैः ॥

दम्भस्य त्रीणि जीवनसर्वस्वानि श्रूयन्ताम् —

आमध्याह्नं नदीवासः समाजे देवतार्चनम् ।

सततं शुचिवेषश्चेत्येतद्दम्भस्य जीवितम् ॥

वाग्भटेन द्रव्यगुणविज्ञाने तुलस्याः अनेके गुणाः पठिताः परं द्वौ
गुणौ विस्मृतौ । तौ इदादीं जनताया हिताय निवेद्येते —

विस्मृतं वाग्भटेनेदं तुलस्याः पठता गुणान् ।

विश्वसम्मोहिनो वित्तदायिनीति गुणद्वयम् ॥

अनेके कण्ठीधारिणः एतस्य प्रमाणम् । अस्तु, विरम्यते इदानी-
मस्माभिः ।

—सभारञ्जनशतकम्

वाल्मीकिः—अधुना अनेकेषाम् ऐतिहासिकानां लोकव्यवहारोप-
योगिनां मनोरञ्जकानां च अनुपमग्रन्थानां प्रणेता व्यासदासाऽपरनामा
कविवरेन्द्रःक्षेमेन्द्रः भवतां सम्मुखं समागच्छति । अयं निजायाः विविध-
लौकिकविषयावगाहनप्रदीणायाः प्रतिभायाः परिचयं स्वयमेव दास्यति
इति वयं नाधिकं ब्रूमहे ।

क्षेमेन्द्रः—आर्यमिश्राः ! एतस्मिन् स्वल्पीयसि अवसरे विस्तरेण
कवितापाठस्तु असम्भव एव, तत्रापि निजनिजकवित्वकौशलसन्दर्शनाय
समुत्सुकमानसेषु कविजनेषु । अतोऽहं संप्रति केवलं कलाविलासनामकात्

पुस्तकात् कांश्चिदंशान् उपन्यस्यामि भवतां पुरस्तात् । रचनाया विषयः
अस्ति धूर्तजनेभ्यो जनतायाः संरक्षणम् । यतो हि—

अजातदेशकालाश्चपलमुखाः पङ्गवोऽपि सप्लुतयः ।

वनविहगा इव मुग्धा भक्ष्यन्ते धूर्तमाजरैः ॥

तत्रापि धनिकयुवका विशेषरूपेण—

धूर्त-कर-कन्दुकानां बारवधू-चरण-नूपुर-मणीनाम् ।

धनिक-गृहोत्पन्नानां मुक्तिर्नास्त्येव मुग्धानाम् ॥

अतः समाजे के जना जनतां वञ्चयन्तीति विषयमवम्ब्य किञ्चि-
दुच्यते । तत्र प्रथमं स्थानं तावद्दाम्भिकानाम् -

एकस्मिन् भवगहने तृण-पल्लव-वलयजाल-संछन्नः ।

कूपः पतन्ति यस्मिन् मुग्धकुरङ्गा निरालम्बे ॥

सोऽयं निधानकुम्भो दम्भो नाम स्वभावगम्भीरः ।

कूटिलैः कुहकभुजङ्गैः संवृतवदनः स्थितो लोके ॥

मत्स्यस्येवाप्सु सदा दम्भस्य ज्ञायते गतिः केन ।

न स्य करौ न च पादौ न शिरो दुर्लक्ष्य एवाऽसौ ॥

मन्त्रवलेन भुजंगा मुग्धकुरङ्गाश्च कूटयन्त्रेण ।

स्थलजालेन विहंगा गृह्यन्ते मानवाश्च दम्भेन ॥

व्रतनियमैर्बकदम्भः संवृतनियमैश्च कूर्मजो दम्भः ।

निभृत-गति-नयन-नियमैर्घोरो मार्जारजो ज्ञेयः ॥

—कलाविलासः १.

दाम्भिकानां तावदिमानि लक्षणानि—

नीचनखश्मश्रुकचः चूली जटिलः प्रलम्बकूर्चो वा ।

बहुमृत्तिकापिशाचः परिमितभाषी प्रयत्नपादत्रः ॥

अङ्गलिभङ्ग-विकल्पन-विविधविवाद-प्रवृत्तपाडित्यः ।

जप-चपलोष्ठः सजने ध्यानपरो नगररथ्यासु ॥

साभिनयाञ्जलिचुलकैः आचमनैः सुचिरमज्जनैस्तीर्थैः ।
संरुद्ध-सकललोकः पुनःपुनः कर्णकोण-संस्पर्शी ॥
सीत्कृत-दन्तनिनादावेदित-हेमन्त दुःसह-स्नानः ।
विस्तीर्ण-तिलकचर्चा-सूचित-सर्वोपचारसुरपूजः ॥
सिरसा विभर्ति कुसुमं विनिपतितां काकदृष्टिमिव रचयन् ।
एवंरूपः पुरुषो यो यः स स दाम्भिको ज्ञेयः ॥

„—

अथ बणिजां सम्बन्धे किञ्चित् —

क्रय-विक्रय कूटतुला-लाघव निःक्षेप-रक्षणव्याजैः ।
एते हि दिवसचौरा मुष्णन्ति मुदा जनं बणिजः ॥
हृत्वा धनं जनानां दिनमखिलं विविधकूटमायाभिः ।
वितरति गृहे किराटः कष्टेन वराटिकात्रितयम् ॥

„—

अथ लेखपालानां विषये —

कूटकलाशतशिविरैः जनधनविवरैः क्षयक्षपातिमिरैः ।
दिविरैरेव समस्ता ग्रस्ता जनता न कालेन ॥

„—

एते हि कालपुरुषाः पृथुदण्डनिपात-हतलोकाः ।
गणनागणनपिशाचाः चरन्ति भूजध्वजा लोके ॥
कस्तेषां विश्वासं यममहिष-विषाणकोटि-कुटिलानाम् ।
व्रजति न यस्य विषक्तः कण्ठे पाशः कृतान्तस्य ॥

„—

गायकानां सम्बन्धे इदानीम् —

तमसि वराकश्चरौरो हाहाकारेण याति संव्रस्तः ।
गायनचौरः प्रकटं हाहाकृतवैव हरति सर्वस्वम् ॥

पापाधघ निनिगमसा घा घा मा मा सगा समा घामा ।
कृत्वा स्वरपदपालीं गायनधूर्तश्चरन्त्येते ॥

„—

सम्प्रति सुवर्णकाराणां वञ्चनाप्रकारः श्रूयताम्—

मेरु स्थितोऽतिदूरे मनुष्यभूमिं चिरात् परित्यज्य ।
भीतोऽवश्यं चौर्याद् घोराणां हेमकाराणाम् ॥
सारं सकलघनानां संपत्सु विभूषणं विपदि रक्षा ।
एते हरन्ति पापाः सततं तेजः परं हेम ॥
एषां हेमकराणां विचारलभ्याः कलाश्चतुःषष्टिः ।
अन्या गूढाश्च कलाः सहस्रानेत्रोऽपि नो वेत्ति ॥

„—

अतः परं वैद्यमहोदयानां विषये—

एते हि देहदाहाद् विरहा इव दुःसहा भिषजः ।
ग्रीष्मदिवसा इवोग्रा बहुतृष्णाः शोषयन्त्येव ॥
विविधौषध परिवर्तैः योगैर्जिज्ञासया स्वविद्यायाः ।
हत्वा नृणां सहस्रं पश्चाद् वैद्यो भवेत् सिद्धः ॥

„—

वाल्मीकिः—इदानीं भवतां सुपरिचितस्य नीतिशृङ्गारवैराग्य-
शतकत्रयस्य प्रणेता सुगृहीतनामधेयः कविवरो भर्तृहरिः समुपस्थितो
भवति । भवन्तः एतस्य सुललितरचनास्वरूपिण्याः त्रिवेण्याः पावने
प्रवाहे श्रवणाहनस्य आनन्दमनुभवन्तु ।

भर्तृहरिः—मन्ये, अद्यत्वे सभासदः खलु प्रायेण शृङ्गाररसस्यैव
शश्रूषव इति । तदहं

वाल्मीकिः—नैवं खलु, वयं त्रितयमपि श्रोतुमिच्छाम ।

भर्तृहरिः अस्तु, यथा आदेशो महाभागानाम् ।

भवन्तो वेदान्त-प्रणिहित-धियामाप्तगुरवो

विदग्धालापानां वयमपि कवीनामनुचराः ।

तथाप्येतद्भूमौ नहि परहितात् पुण्यमधिकं

न चास्मिन् संसारे कुवलयदृशो रम्यमग्रम् ॥

—शृङ्गारशतकम्, ५२

स्मितं किञ्चिद्वक्त्रे सरल-तरलो दृष्टिविभवः

परिष्यन्दो वाचामभिनव-विलासोक्ति-सरसः ।

गतीनामारम्भः किसलयित-लीला-परिकरः

स्पृशन्त्यास्तारुग्यं किमिह नहि रम्यं मुगदशः ॥

„—६

यथा ग्रन्थेषु एकः परिशिष्टभागो भवति तथैव स्वर्गस्यापि एकः
परिशिष्टभागः अस्ति । स चायं वर्तते—

मालती शिरसि जृम्भणोन्मुखी

चन्दनं वपुषि कुङ्कुमान्वितम् ।

वक्षसि प्रियतमा मनोहरा

स्वर्गं एष परिशिष्ट आगतः ॥

„—२४

अतएव—

उरसि निपतितानां स्रस्त-घम्मिल्लकानां

मुकुलितनयनानां किञ्चिदुन्मीलितानाम् ।

सुरत-जनित-खेद-स्वार्द्र-गण्डस्थलीना—

मधरमधु बधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति ॥

„—२६

तथापि तत्त्वदृष्ट्या विचारे क्रियमाणे—

घन्यास्त एव तरलायत-लोचनानां

तारुण्यरूप-घन-पीन-पयोधराणाम् ।

क्षामोदरोपरि लसत्त्रिवली लतानां

दृष्ट्वाऽकृति विकृतिमेति मनो न येषाम् ॥

„—६२

सम्प्रति सुभाषितानि कानिचित् श्रावयामि—

कानिचित् वस्तूनि स्थूलतया शोभन्ते कानिचित् च तनिम्ना एव
शोभन्ते । तत्र कानि वस्तूनि तनिम्ना शोभन्ते इति श्रूयताम्—

मणिः शानोल्लीढः समरविजयी हेतिदलितो

मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः ।

कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालललना

तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्षिषु नृपाः ।

—नीतिशतकम्—४४

सज्जनपुरुषाः स्वयमेव परेषां हितसम्पादने संलग्ना भवन्ति -

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति

चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम् ।

नाऽभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति

सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः ॥

„—७४

आत्मनो गुणानां वर्णनं तु सर्वे जनाः कुर्वन्ति, विशेषतश्च अस्मिन्
विज्ञापनयुगे, परन्तु—

मनसि वचसि काये पुण्य-पीयूष-पूर्णाः

त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।

परगुण-परमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ।

„—८६

वाल्मीकिः—संस्कृतसाहित्यरसिकानां कृते दशकुमारचरितप्रणेता महाकविर्दण्डी नितरां परिचितो वर्तते । सम्प्रति भवन्तः तस्य साक्षात् दर्शनं कुर्वन्तु तथा तस्य गद्यपद्यमयीं रचनां च शृण्वन्तु । (दण्डिनं प्रति) आगच्छन्तु कविवर्याः ।

दण्डी—प्रथमं तावत् एकं मङ्गलात्मकं पद्यं पठामः—

ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः शतधृति-भवनाम्भोरुहो नालदण्डः

क्षोणीनौकूपदण्डः क्षरदमर-सरित्पट्टिका-केतुदण्डः ।

ज्योतिश्चक्राक्षदण्डस् त्रिभुवनविजयस्तम्भदण्डोऽङ्घ्रिदण्डः

श्रेयस्त्रैविक्रमस्ते वितरतु विबुधद्वेषिणां कालदण्डः ॥

एकः कविः—अहो, यथार्थं कवेर्नाम दण्डी इति ।

द्वितीयः—आम्, यथा नाम तथा गुणः !

तृतीयः—(मन्दस्वरेण) दण्डिनः पदलालित्यस्य इदमुहाहरणं वर्तते !

दण्डी—इदानीं स्वकीयग्रन्थस्य आरम्भिकमेव स्वल्पकायं गद्यांशं पठामि । सावधानाः शृण्वन्तु ।

अस्ति समस्त नगरी-निकषायमाणा शश्वदगण्यपण्यविस्तारित—मणिगणादिवस्तुजात—व्याख्यात-रत्नाकरमाहात्म्या मगधदेशशेखरीभूता पुष्पपुरी नाम नगरी । तत्र वीरभटपटलोत्तरङ्गतुरङ्गकुञ्जरमकरभीषण सकलरिपुगणकटकजलनिघ्नमथन-मन्दरायमाण-समुद्दण्डभुजदण्डः, पुरन्दरपुराङ्गणवनविहरणपरायण-गीर्वाणतरुणगणिकागणजोगीयमानयाऽतिमानया शर-

दिन्दु-कुन्द-धनसार-नीहार-हार-मृणाल-मराल-सुरगज-नीर-
क्षीर-गिरिशिट्टहास-कैलास-काशनीकाशमूर्त्या रचितदिगन्तराल-
पूर्याऽभितः सुरभितः, स्वर्लोकशिखरोरुचिररत्नरत्नाकरवेला-
मेखला-वलयितघरणीरमणीसौभाग्यभोगभाग्यवान्, अनवरत-
यागदक्षिणारक्षित-शिष्टविशिष्टविद्यासंभारभासुरभूसुरनिकरोवि-
रचितारातिसंपातेन प्रतापेन सतततुलितवियन्मध्यहंसो राजहंसो
नाम धनकन्दर्पसौन्दर्यसौन्दर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव ।

—दशकुमारचरितम्, १

वाल्मीकिः—सम्प्रति संस्कृतसाहित्याकाशस्य एकं नितान्तमुज्ज्वलं
ज्योतिः श्रीजगद्धरभट्टमहाशयः कवितापाठाय निवेद्यते । एतस्य स्तुति-
कुसुमाञ्जलिः काव्यकलाकौशलस्य एकं परमरमणीयं निदर्शनं वर्तते ।
अयं कानिचित् सुरभीणि सुमनोहराणि च पद्यप्रसूनानि अस्मभ्यमपि
उपायनीकरिष्यतीति अहमाशासे ।

जगद्धरभट्टः—अद्य महामहिमभाजः कविसमाजस्य पुरस्तात् यदयं
कवितापाठस्य अवसरः समुपलब्धोऽस्माभिः तदर्थमहमात्मानं नितान्त-
मेव धन्यं मन्ये । यतः—

धन्याः शुचीनि सुरभीणि गुणोम्भितानि
वाग्वीरुधः स्ववदनोपवनोद्गतायाः ।

उच्चित्य सूक्तिकुसुमानि सतां विविक्त-
वर्णानि कर्णपुलिनेष्ववतंसयन्ति ॥

स्तुतिकुसुमाञ्जलिः ५, ३

इदानीं विभिन्नप्रसङ्गानां कानिचित् पद्यानि श्राव्यन्ते । तत्रादौ
भगवतः श्री चन्द्रशेखरस्य स्तुतिं कतुं कविः सरस्वतीं प्रार्थयते—

त्वामेव देवि शरणीकरवाणि वाणि !

कल्याणि ! सूक्तिभिरुपस्तुहि चन्द्रमौलिम् ।

न चाहं मिथ्यास्तुतौ भवतीं नियोजयामीत्याह--

मातर्नयामि न पुनर्भवतीमलीक--

वाचाल-बालिश-विलङ्घन-भाजनत्वम् ॥

„—२६

(पुनः सम्पूर्णं श्लोकं पठति)

न च शिवसन्निधौ मम सहायकाभावात् स मदीयं निवेदनं श्रोष्यति
न वेति भवत्या चिन्तनीयम् । तत्रत्याः स्त्रियः साजात्येन तव सहायतां
करिष्यन्तीति कविः सरस्वतीं स्तुतये दृढीकरोति—

मातः सरस्वति ! बध्नान धृतिं त्वदीयां

विज्ञप्तिमार्ति-विधुरां विभवे निवेद्य ।

देवी शिवा शशिकला गगनापगा च

कुर्वन्त्यवश्यमबलाजन-पक्षपातम् ॥

„—२४

न च साजात्येऽपि निसर्गकुटिलास्ताः स्त्रियः मम साहाय्यं विहाय
अपमानमेव करिष्यन्तीति भवत्या भेतव्यम् । यतो हि—

एषा निसर्गकुटिला यदि चन्द्रलेखा

स्वर्गापगा च यदि नित्यतरङ्गितेयम् ।

देवी दयार्द्र-हृदया तु नगेन्द्रकन्या

घन्या करिष्यति न ते निबिडामवज्ञाम् ॥

„—२५

तस्मात्—

देवि प्रपन्नवरदे गुणगौरि गौरि

यद् गौरियं परिमितं स्रवतीह किञ्चित् ।

तत्स्वामिने समुचिते समये सुपाकम्
आकूतवेदिनि निवेदयितुं प्रसीद ॥

„—२७

भगवन्तं शङ्करं प्रति कानिचिद् निवेदनानि इदानीं श्रूयन्ताम्—
प्रथमं तु—विषय-पन्नग-पाश-वशीकृतं
तदनु— भव-महार्णव-मग्नमनीश्वरम् ।
ततश्च—बहल-मोह-महोपल-पीडितं
हर ! समुद्धर मां शरणागतम् ॥

अभय-घोष-मिषोन्मिषितामृत-
द्रवमवन्ध्य-धृत-स्मित-चन्द्रकम् ।
वदनचन्द्रमसं तव पश्यतो
मम कदा नु तमः शमयेष्यति ॥
इदमनङ्ग-जनङ्गम-सङ्गम—
भ्रमदमन्दमलं चपलं मनः ।
अमृतकुम्भकर ! द्युतरङ्गिणी—
धर ! सुधाकरशेखर ! शोघय ॥

„—१०, ५९, ६१, ५७

अथ यदि मम अनेकेदोषैर्भवान् मद्दुपरि कृपां न करोति तर्हि कथं
नाम मम समानदोषान् जनान् अनुगृह्णाति इति आक्षिपन् कविव्रूते—

क्षामो निकामजडिमा कुटिलः कलावान्
दोषाकरोऽयमिति चेत्यजसि प्रभो ! माम् ।
एतादृशैरुपगतोऽपि समस्तदोषैः
कस्मात्त्वया शिरसि नाथ धृतः शशाङ्कः ॥

अथ— शृङ्गी विवेकरहितः पशुरुन्मदोऽयं
मत्वेति चेत्परिहरस्यतिकातरं माम् ।

एवंविधोऽपि वृषभश्चरणार्पणेन
नीतस्त्वया कथमनुग्रहभाजनत्वम् ॥

अथ च— पृष्ठे भवन्तमयमुद्रहते कदाचित्
एतावता यदि तवैति दयास्पदत्वम् ।
स्वामिन्नहं तु हृदयेऽन्वहमुद्रहामि
त्वामित्यतः कथमहो न तवाऽनुकम्प्यः ॥

पुनश्च— सर्वापहाररतिरुन्मद-वक्र-वक्त्रस्य
त्याज्योऽस्मि कर्णचपलो यदि तुन्दिलस्ते ।
एवंविधोऽपि भगवन् गणनायकत्वे
कस्मादयं गजमुखो भवता नियुक्तः ॥

७७-११, ४२, ५३-५४, ६१.

एवं प्रकारेण बहुधा आक्षिप्तोऽपि यदा पिनाकपाणिः प्रसन्नो न
भवति तदा आकुलीभूय भक्तः कुपित इव पुनर्ब्रूते—

आः किं न रक्षसि नयत्ययमन्तको मां
हेलावलेपसमयः किमयं महेश ।
मा नाम भूत् करुणया हृदयस्य पीडा
व्रीडाऽपि नास्ति शरणागतमुज्झतस्ते ॥

अरे !, अज्ञोऽसि किं किमबलोऽसि किमाकुलोऽसि
व्यग्रोऽसि किं किमघृणोऽसि किमक्षमोऽसि ।
निद्रालसः किमसि किं मदघूर्णितोऽसि
क्रन्दन्तमन्तकभयार्तमुपेक्षसे यत् ।

”—

कविजनाः सभासदश्च ! एवम्बिधा असंख्याः सूक्तयः सन्ति ।
भूयांश्च समयो मया गृहीतः । तदिदानीमन्ते एकं शुभाशीश्लोकमुक्त्वा
विरमामि ।

राकेन्दोरपि सुन्दराणि हृदयग्राहीणि बालाङ्गना—
मुग्धालाप-कथामृतादपि परं हारीणि हारादपि ।
अत्युत्ताल-शिखाल-बालवचसः सम्पूर्णकर्णामृत—
स्यन्दीनि त्रिजगद्गुरोः स्तुतिकथासूक्तानि पुष्पन्तुवः ॥

„—

वाल्मीकिः—सम्प्रति शृङ्गाररसस्य अमरकीर्तिः कविः अमरुक-
नामा सभाभुवमलङ्कारिष्यति । तदिदानीं सभासदः शृङ्गाररसस्य सरस-
मधुरास्वादाने निःसंकोचं सम्प्रवृत्ता भवन्तु ।

अमरुकः—(सस्मितम्) मान्याः सभासदः ! अत्र ईदृशा अपि
अनेके कवयः सन्ति ये शृङ्गारेण सह वैराग्यमपि वर्णयन्तः सममेव द्वयो-
नौकयोरुपरि पदं निदधते तथा श्रोतृजनानपि तस्मिन्नेव संकटे पातयितुं
प्रवर्तन्ते (सर्वे हसन्ति) । परन्तु न तथा अहं करिष्यामि । भवन्तः
सम्प्रति केवलं विशुद्धशृङ्गाररसस्यैव आस्वादनं कुर्वन्तु ।

सुरैरसुरैश्च अमृतप्राप्तये पुरा समुद्रमथनं विहितमिति सर्वे जना
जानन्ति । परन्तु तैः व्यर्थमेव परिश्रमः कृत इत्युच्यते—

संदष्टेऽधरपल्लवे सचकितं हस्ताग्रमाधुन्वती
मा मा, मुञ्च शठेति कोपवचनैरानर्तित-भ्रूलता ।
सीत्काराञ्चित-लोचना सरभसं यैश्चुम्बिता मानिनी
प्राप्तं तैरमृतं श्रमाय मथितो मूढैः सुरैः सागरः ॥

—अमरुशतकम् ३६.

अन्येषां शरीरगतैर्दोषैरन्ये जना दुःखिनो न भवन्तीति सर्वसाधारणो
विश्वासः । परन्तु शृङ्गारजगति एतद्द्विन्नमेव दृश्यं दृष्टिगोचरीभवति ।
एकस्य कामिनोऽनुभवः श्रूयताम्—

सा बाला वयमप्रगल्भमनसः सा स्त्री वयं कातराः
सा पीनोन्नतिमत् पयोधरयुगं घत्ते सखेदा वयम् ।
याक्रान्ता जघनस्थलेन गुरुणा गन्तुं न शक्ता वयम्
दोषैरन्यजनाश्रयैरपटवो जाताः स्म इत्यद्भुतम् ॥

„—३४

एवमेव अन्यः कश्चित् जनः प्राह—

सा यौवनमदोन्मत्ता वयमस्वस्थचेतसः ।
तस्या लावण्यमङ्गेषु दाहोऽस्मासु विजृम्भते ॥

„—१५२

अग्निः शीतलैर्वस्तुभिः क्षाम्यति इति सुतरां सर्वे स्वीकरिष्यन्ति ।
परन्तु यः खलु अग्निः शीतलैरेव वस्तुभिः वर्द्धते तस्य केनोपायेन उप-
शमः ? ईदृश एव कामाग्निर्भवति । मन्ये, भवतामपि अत्र वैमत्यं न
भविष्यति ?

(सर्वे हसन्ति) ।

हारो जलार्द्रवसनं नलिनीदलानि
प्रालेयशीकरमुचस्तुहिनांशुभासः ।
यस्येन्धनानि सरसानि च चन्दनानि
निर्वाणमेष्यति कथं स मनोभवाग्निः ॥

„—१३४

परस्परं विरोधे जाते जनाः स्वदत्तं वस्तु विरोधिनः सकाशात् पुनः
प्रतिगृह्णन्ति इति लोकाचारः अस्ति । एवमेव कश्चित् कुपितः कामी
जनः काञ्चित् कुपितां कामिनीं स्वदत्तं वस्तु परावर्तयितुं सकोपं ब्रूते ।

कोपस्त्वया हृदि कृतो यदि पङ्कजाक्षि !

सोऽस्तु प्रियस्तव किमत्र विधेयमन्यत् ।

परं त्वया एतत्तु अश्वयमेव कर्तव्यं भविष्यति—

आश्लेषमर्पय मदर्पितपूर्वमुच्चैर्

मह्यं समर्पय मदर्पितचुम्बनं च ॥

—१३३

वैरनिर्यातिनस्य कीदृशीयं विचित्रा रीतिः कामिजनानाम् ?

अथ च धर्मशास्त्रकारैः कथ्यते—

“न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति” इति, परं ते तस्य कारणं न निर्दिशन्ति । इदानीं तस्य कारणं एकस्य भुक्तभोगस्य मुखात् श्रूयताम्—

पीतो यतःप्रभृति कामपिपासितेन

तस्या मयाऽघररसः प्रचुरः प्रियायाः ।

तृष्णा ततः प्रभृति मे द्विगुणत्वमेति

लावण्यमस्ति बहु तत्र किमत्र चित्रम् ॥

—१३०

कीदृशः पुरुषो मकरध्वजस्य सर्वाधिकः प्रियो भवतीति श्रूयताम्—

सालक्तकेन नव-पल्लव-कोमलेन

पादेन नूपुरवता मदनालसेन ।

यस्ताड्यते दयितया प्रणयापराधात्

सोऽङ्गीकृतो भगवता मकरध्वजेन ॥

—११६

न जाने भवत्सु को नाम ईदृशो भाग्यशालीति ?

वाल्मीकिः—इतः परं संस्कृतसाहित्यजगति जेगीयमानकीर्तयो

महाकवयः श्रीमन्तः पण्डितराजजगन्नाथमहोदयाः निजसूक्तिरत्नावलिभिः

भवतां कर्णपुटानि अलङ्कुरिष्यन्ति । तदिदानीं सभासदः अपिहितकर्ण-
प्रदेशा भवन्तु इति मेऽनुरोधः (सर्वे हसन्ति)

जगन्नाथः—मान्याः सभासदः सुहृदश्च ! अद्य अनुमानतः शताब्दी-
त्रयानन्तरं भारतवसुन्धराया एतस्मिन् परमपावने प्रदेशे समागमनस्य
शुभावसरं लब्ध्वा कमपि वाचामगोचरं आनन्दमनुभवामि ।
विशेषतश्च इदानीं पारतन्त्र्यपाशनिर्मुक्तां स्वतन्त्रां भारतभुवं विलोक्य ।
तदेतर्हि अहमपि कानिचित् पद्यानि श्रावयित्वा श्रीमतः समाराधयितु-
मिच्छामि । मन्ये भवन्तः सस्नेहमिमां सेवामङ्गीकरिष्यन्तीति । आदौ
तावदेकं वन्दनात्मकं पद्यं पठामः ।

स्मृताऽपि तरुणातपं करुणया हरन्ती दृशाम्

अभङ्गुरतनुत्विषां बलयिता शतैर्विद्युताम् ।

कलिन्द-गिरि-नन्दिनी-तट-सुरद्रुमालम्बिनी

मदीय-मति-चुम्बिनी भवतु कापि कादम्बिनी ॥

—भामिनीविलासम् ४, ३

कवयः—पुनरपि एकवारम् ।

जगन्नाथः—पुनश्च एकं वन्दनान्तरम्—

अपारे संसारे विषमविषयारण्य-सरणौ

मम भ्रामं भ्रामं विगलित-विरामं जडमतेः ।

परिश्रान्तस्यायं तरणितनया-तीर-निलयः

समन्तात् सन्तापं हरिनव-तमालस्तिरयतु ॥

„—४, ७.

इतः परं परिषत्पतीनामादेशानुसारं कानिचित् सुभाषितानि
श्रावयामः । तत्र विद्यावतां सम्बन्धे एकं पद्यम्—

अन्या जगद्धितमती मनसः प्रवृत्ति—
रन्यैव कापि रचना वचनावलीताम् ।
लोकोत्तरा च कृतिराकृतिरार्तहृद्या
विद्यावतां सकलमेव गिरां दवीयः ॥

„—१, ६८

विशालहृदयाः पुरुषाः आपत्तिकाले समधिकमौदार्यशालिनो भव-
न्तीति उच्यते—

आपद्गतः खलु महाशयचक्रवर्ती
विस्तारयत्यकृतपूर्वमुदारभावम् ।

कालागुरुर्वहन-मध्यगतः समन्तात्

लोकोत्तरं परिमलं प्रकटीकरोति ॥

„—१, ६९

घटकर्परः—(उत्थाय) महामान्याः सभापतिमहोदयाः ! ग्रहमपि
कानिचित् पद्यानि श्रावयितुमिच्छामि । यदि श्रीमतामादेशः स्यात् ।

वाल्मीकिः—अवश्यं श्रावयन्तु भवन्तः । किं नाम तत्रभवतां
शुभाभिधानम् ?

घटकर्परः मदीयं नाम घटकर्पर इति जनाः कथयन्ति ।

(सर्वे हसन्ति)

वाल्मीकिः आगच्छन्तु भवन्तः, दशयन्तु च स्वकीयं कवित्व-
कौशलम् ।

घटकर्परः—महानुभावाः ! नाहं श्रीमतामधिकं समयं ग्रहीष्यामि ।
केवलं वर्षावर्षनविषयकाणि द्वित्राणि पद्यानि श्रावयन्ते । यमकालङ्कार-
विशिष्टता मम कवितानां वैशिष्ट्यं वर्तते ।

हंसा नदन्मेघभयाद् द्रवन्ति
निशामुखान्यद्य न चन्द्रवन्ति ।
मवाम्बुमत्ताः शिखिनो नदन्ति
मेघागमे कुन्दसमानदन्ति ॥
क्षिप्रं प्रसादयति सम्प्रति कोपि तानि
कान्तामुखानि रति-विग्रह-कोपितानि ।
उत्कण्ठयन्ति पथिकान् जलदाः स्वनन्तः
शोकः समुद्रहति तद्वनितास्वनन्तः ॥

निचितं खमुपेत्य नीरदैः प्रियहीना-हृदयावनी-रदैः ।
सलिलैर्निहितं रजः क्षितौ रविचन्द्रावपि नोपलक्षितौ ॥

एवमेव मम कवितासु सर्वत्र यमकालङ्कारस्य अवरुणनीया रमणीयता
भवद्भिः साक्षात्कर्तुं शक्यते । अस्मिन् विषये च मम इदं साभिमानं
वक्तव्यं वर्तते—

भावानुरक्त-वनिता-सुरतैः शपेयम्
आलभ्य चाम्बु तृषितः करकोशपेयम् ।
जीयेय येन कविना यमकैः परेण
तस्मै वहेयमुदकं घटकपर्परेण ॥

„—१००

(सर्वे मिथः पश्यन्ति हसन्ति च)

चाल्मीकिः—(व्यासं प्रति) प्रायः सर्वेषामपि कवीनां कवितापाठः
समाप्तः ?

व्यासः—ओम्, सर्वेषामपि कवितापाठः समाप्तः । इदानीं वयं
श्रीमतामध्यक्षमहोदयानामपि मुखात् किञ्चित् श्रोतुमिच्छामः । तद यदि
निवेदनमिदं श्रीमतां कृते अतिश्रमावहं न स्यात् तर्हि अनुग्राह्या वयं
कतिपयपद्यपीशुषरसवर्षणेन ।

वाल्मीकिः—महानुभावाः । प्रायेण नवनवानि एव वस्तूनि रोचन्ते
जनेभ्यः । तदाशङ्के, नवीनैर्भवद्भिः नवीनासु कवितासु श्रावितासु मदीया
अतिपुरातनी कविता कदाचित् रुचिकरी न स्यात् सभासदां कृते । तथापि
भवतां स्नेहसंवलितमिममादेशं उल्लङ्घयितुमसमर्थः कानिचित् पद्यानि
श्रावयिष्यामि । तत्र प्रथमतो भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य तथा भक्तप्रवरस्य
श्रीहनूमतो वन्दनात्मकं पद्यद्वयम्—

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।

लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं काञ्चनाद्रि-कमनीय-विग्रहम् ।

पारिजाततरु-मूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम् ॥

इदानीं वर्षावर्णनपराणि कानिचित् पद्यानि शृण्वन्तु भवन्तः—

नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः ।

पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम् ॥

इदानीं हि—

शक्यमम्बरमारुह्य मेघसोपानपङ्क्तिभिः ।

कुटजार्जुनमालाभिरलङ्कितुं दिवाकरम् ॥

मन्दमारुतनिश्वासं सन्ध्याचन्दनरञ्जिम् ।

आपाण्डुजलदं भाति कामातुरमिदाम्बरम् ॥

मेघोदर-विनिर्मुक्ताः कल्लारसुखशीतलाः ।

शक्यमञ्जलिभिः पातुं वाताः केतकगन्धिनः ॥

समुद्रहन्तः सलिलातिभारं बलाकिनां वारिधरा नदन्तः ।

महत्सु शृङ्गेषु महीधराणां विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्ति ॥

मेघाभिकामा परिसंपतन्ती संमोदिता भाति बलाकपङ्क्तिः ।

वातावधूता वरपौण्डरीका लम्बेव माला रचिताम्बरस्य ॥

तडित्पताकाभिरलङ्कृतानाम् उदीर्ण-गम्भीर-महारवाणाम् ।
 विभान्ति रूपाणि बलाहकानां रणोद्यतानामिव वारणानाम् ॥
 षट्पाद-तन्त्री-मधुराभिरामं प्लवङ्गमोदीरित-कण्ठतालम् ।
 आविष्कृतं मेघमूदङ्गनादैर् वनेषु सङ्गीतमिव प्रवृत्तम् ॥

„—किष्किन्वा २८, ३, ४, ६, ८, २२, २३, ३१, ३६,

सम्प्रति चन्द्रोदयवर्णनस्य द्वित्राणि पद्यानि श्रूयन्ताम् -

हंसो यथा राजतपञ्जरस्थः सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः ।
 वोरो यथा गवितकुञ्जरस्थः चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाऽम्बरस्थः ॥
 विनष्ट-शीताम्बु-तुषारपङ्को महाग्रह-ग्राह-विनष्टपङ्कः ।
 प्रकाशलक्ष्म्याश्रयनिर्मलाङ्को रराज चन्द्रो भगवान् शशाङ्कः ॥
 शिलातलं प्राप्य यथा मृगेन्द्रो महारणं प्राप्य यथा गजेन्द्रः ।
 राज्यं समासाद्य यथा नरेन्द्रस्तथा प्रकाशो विरराज चन्द्रः ॥

„—सुन्दर० ५, ५-७,

वाल्मीकिः—प्रिय महानुभावाः ! सम्प्रति कवितापाठस्य पर्यवसान-
 कालः । तदिदानीं “मधुरेण समापयेत्” इति प्राचीनोक्तिमनुसृत्य मया
 महाकविश्रीमदम्बाकादत्तव्यासमहोदयानां नाम प्रस्तूयते । एतेषां खलु
 एकेन सुललित-लय-ताल-समन्वितेन गीतपाठेन अस्य सम्मेलनस्य
 मङ्गलमयी समाप्तिर्भवतु ।

कवयः—अतीव शोभनम्, अतीव शोभनम् ।

कालिदासः—भगवता व्यासेन आरब्धस्य सम्मेलनस्य व्यासद्वारा
 एव समाप्तिरपि इष्यते । (सर्वे हसन्ति)

वाल्मीकिः—व्यासमहोदयाः ! आगच्छन्तु ।

श्रम्बिकादत्तव्यासः—महानुभावाः ! एतादृशस्य परमानन्दमयस्य
 सम्मेलनस्य समाप्तये अहम् आदिष्टोऽस्मि । कर्म नु ईदृशं कार्यं रोचेत ?

तथापि आदेशः अस्ति । अतः एकं गीतं श्रीमतां सेवायामुपस्थाप्यते ।

सखि हे नन्दतनय आगच्छति ।

मन्दं मन्दं मुरलीरणनैः समधिक-सुखं प्रयच्छति ॥
भैरवरूपः पापिजनानां सतां सुखकरो देवः ।
कलित-ललित-मालतीमालकः सुरवर-वाञ्छित-सेवः ॥
सारङ्गैः सारङ्गसुन्दरो दृग्भिर्निपीयमानः ।
चपलाचपल-चमत्कृतिवसनो विहित-मनोहरगानः ॥
श्रीवत्सेन लाञ्छितो हृदये श्रीलः श्रीदः श्रीशः ।
सर्वश्रीभिर्युतः श्रीपतिः श्रीमोहनो गवीशः ॥
गौरीपतिना सदा भावितो बर्हिणबर्ह-किरीटः ।
कनककशिपुवदनो बलिमथनो निहत-दशाननकीटः ॥

(सर्वे तालिकां वादयन्ति)

वाल्मीकिः—

(कवीन् प्रति) महामान्याः कवायः । इदानीं कवितापाठस्य सर्वोऽपि
कार्यक्रमः समाप्ति गतः । अन्ते अस्माभिः सर्वैरपि मिलित्वा एकस्वारेण
भारतराष्ट्रस्य तथा सर्वेषां भूमण्डलनिवासिनां प्राणिनां कृते शुभ-
कामनाः प्रकटीकृत्य अस्वाः परिषदः समाप्तिविधेया ।

(सर्वे उत्थाय पंक्तिबद्धा भवन्ति तथा महामुनि वाल्मीकि शुभ-
कामनापद्यानि पठन्ति)

वाल्मीकिः—

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।

मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहेतुकी ॥

—श्रीमद्भागवतम्

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः ।

दोषाः प्रयान्तु शान्तिं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥

—मलतीमाधवम्

धर्म-जाति-मत-देशभेदजं वैमनस्यमपनीय मानसात् ।

भूतले निखिलमानवा मुदा संवसन्तु मिलिताः परस्परम् ॥

—सम्पादकस्य

पटाक्षेपः ।



कार्यालय द्वारा प्रकाशित

कुछ अन्य मनोरंजक पुस्तकें

१—कौत्सस्य गुरुदक्षिणा (एकांकी नाटक)	०-२५
२—भोजराज्ये संस्कृतसाम्राज्यम् (एकांकी नाटक)	०-३०
३—बालनाटकम् (१२ छोटे-छोटे दृश्य)	०-५०
४—संस्कृतप्रहसनम् (संस्कृत के प्रहसन)	०-७५
५—संस्कृतगानमाला (अनेक लयों के संस्कृत गीत)	०-५०
६—संस्कृतगीतमाला (महिलोपयोगी संस्कृतगीत)	०-१५
७—भारतराष्ट्रगीतम् (राष्ट्रीय संस्कृतगीत)	०-५०
८—बालविनोदमाला (विनोदी श्लोकों का संग्रह)	१-००
९—बालशब्दकोश (तुकबन्दी के रूप में)	०-५०
१०—बालसंस्कृतम् (हिन्दी संस्कृत के लयबद्ध वाक्य)	०-६०

पुस्तक मिलने का पता—

व्यवस्थापक, सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय
डी० ३८११० हौजकटोरा
वाराणसी